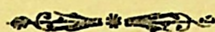
॥ श्री विश्वनाथो विजयते ॥

* श्रीशम्भुगीता *

--: भाषानुवादसहित :--



--: द्वितीयावृत्ति :--



श्रीभारतधर्म महामण्डलके

शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित

काशी ।

सम्वत् २०४५

मूल्य १०) रुपया

प्रकाशक :—

श्रीभारतधर्म महामण्डल

लहुराबीर, वाराणसी--२२१००१

द्वितीय संस्करण

सम्वत् २०४६

सन् १९८९

मुद्रक :—

हनुमान मुद्रण यन्त्र

बड़ी पियरी, वाराणसी–१

ॐ तत्सत् ।

श्रीशम्भुगीता ।

भूमिका

श्रीभारतधर्म्म महामण्डल प्रधान कार्य्यालय काशी धामके शास्त्र-प्रकाश विभाग द्वारा अब तक प्रकाशित छः गीताओं का हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशन होकर हिन्दी साहित्य भण्डार और साथही साथ सनातनधर्म्म ग्रन्थभण्डारकी श्रीवृद्धि हुई है। इससे पहले श्री-संन्यास गीता सब प्रकारके सन्यासी और साधुसम्प्रदायों के लिये, सौर्य्य सम्प्रदायके लिये सूर्य्यगीता, वैष्णवसम्प्रदायके लिये श्रीविष्णुगीता, शाक्तसम्प्रदायके लिये श्रीशक्तिगीता, गाणपत्य सम्प्रदायके लिये श्री धीशगीता और साधकोंके लिये श्रीगुरुगीता हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित की गई है। अब शैव सम्प्रदायके लिये यह श्रीशम्भुगीताका द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

सर्वव्यापक, सर्वजीवहितकारी और पृथिवी के सब धर्मों के पिता-रूप सनातनधर्म में निर्गुण और सगुण उपासनारूप से प्रधान दो भेद हैं। यद्यपि लीलाविग्रह अर्थात् अवतार-उपासना, ऋषि देवता पितृ-उपासना और क्षुद्र तामसिक शक्तियों की उपासनारूप से सनातन धर्ममें सब अधिकारके उपासकवृन्दके लिये और भी कई उपासना-शैलियोंका विस्तारित वर्णन पाया जाता है; परन्तु लीलाविग्रह उपासना अर्थात् अवतार उपासना तो पञ्च सगुण उपासनाके अन्तर्गत ही है। श्रीविष्णुभगवान्, श्रीसूर्य्यभगवान्, श्रीभगवती देवी, श्रीगणेश-भगवान् और श्रीसदाशिवभगवान्, इन पञ्च सगुण उपास्य देवताओं में सबके ही अवतारों का वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है; क्योंकि सगुण उपासनाकी पूर्णताका लीलामय स्वरूप के विना उपासक अनुभव नहीं कर सकता। अस्तु, लीलाविग्रहकी उपासना सगुण उपासनाकी पूर्णता के लिये ही होती है तथा ऋषि देव पितृ--उपासना और अन्य क्षुद्र उपासनाका अधिकार सकाम राज्यसे ही सम्बन्ध रखता है।

निर्गुण उपासना में सर्व साधारणका अधिकार होही नहीं सकता। निर्गुण उपासना अरूप, भावातीत, वाक् मन और वुद्धिसे अगोचर आत्मस्वरूपकी उपासना है। निर्गुण उपासना केवल आत्मज्ञान-प्राप्त

तत्त्वज्ञानी महापुरुषों तथा जीवन्मुक्त संन्यासियोंके लिये ही उपयोगी समझी जासकती है और केवल सगुण उपासनाही सब श्रेणी के उत्तम उपासकवृन्दके लिये हितकारी समझकर पूज्यपाद महर्षियों ने उसके सिद्धान्तों का अधिक प्रचार शास्त्रों में किया है। सृष्टि के स्वाभाविक पञ्च तत्त्वों के अनुसार पञ्च विभागों पर संयम् करके पञ्च उपासक सम्प्रदाय के भेद कल्पना करते हुए पूर्वाचार्य्यों ने पञ्च सगुण उपासना-प्रणाली प्रचलित की है। विष्णु उपासकके लिये वैष्णवसम्प्रदाय प्रणाली, सूर्य्य उपासकके किये सौर्य्य सम्प्रदाय प्रणाली, शक्ति उपासक के लिये शाक्त सम्प्रदाय प्रणाली, गणपति उपासकके लिये गाणपत्य-सम्प्रदाय प्रणाली और शिव उपासक के लिये शैवसम्प्रदाय प्रणाली उन्होंने विस्तारित रूप से नाना शास्त्रों में वर्णन किया है। प्रत्येक उपासक सम्प्रदाय के उपयोगी अनेक आर्षसंहिताएं और अनेक तन्त्र ग्रन्थ आदि पाये जाते हैं यहां तक कि प्रत्येक सम्प्रदाय के उपयोगी उपनिषद् भी प्राप्त होते हैं। उसी शैली के अनुसार प्रत्येक सम्प्र-दायके उपासकके लिये अपने अपने सम्प्रदायके प्रत्येक पचाङ्ग ग्रन्थ हैं। अपने अपने सम्प्रदायके पंचाङ्ग ग्रन्थों में से अपने अपने सम्प्रदायका गीताग्रन्थ सबसे प्रधान माना गया है। विष्णुसम्प्रदायकी श्रीविष्णुगीता, सूर्य्यसम्प्रदायकी श्रीसूर्य्यगीता, देवीसम्प्रदायकी श्रीशक्तिगीता, गणपति सम्प्रदायकी श्रीधीशगीता और शिवसम्प्रदायकी श्रीशम्भुगीता, ये पांचों ग्रन्थ अति अपूर्व उपनिषद् रूपी है। इन पांचों ग्रन्थरत्नोंका प्रकाशन अभी तक ठीक ठीक नहीं था। यदि देवीगीता और गणेशगीता नाम से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित भी हुए हैं तो वे असम्पूर्ण दशामें प्रकाशित हुए हैं। श्रीभारतधर्म्म महामण्डल के शास्त्रप्रकाश विभाग तथा अनुसन्धान विभाग द्वारा पांचों ग्रन्थरत्न अपने सम्पूर्ण आकार में प्राप्त हुए हैं। उन्हीं पांचों में से यह पाँचवीं गीता अब प्रकाशित हो रही है। ये पांचों गीताएँ वेदविज्ञान, सनातन धर्मके अपूर्व रहस्य, गंभीर अध्यात्मतत्त्व और पूज्यपाद महर्षियों के ज्ञानगरिमाके सिद्धान्तों से परिपूर्ण हैं, इन पांचोंके पाठ करनेसे पाठक बहुत कुछ ज्ञान लाभ कर सकते हैं। निर्गुण ब्रह्म तथा उसकी उपासना का रहस्य, सगुण उपासना का महत्त्व और विज्ञान, वेद के कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का मर्म, सनातनधर्म के सब गंभीर सिद्धान्तोंका निर्णय, अध्यात्मतत्त्व अधिदैव-तत्त्व और अधिभूततत्त्व, यहां तक कि वेदका सार सब कुछ इन पञ्च

गीताओं में प्राप्त होता है। ज्ञानकाण्डका विघ्न जिस प्रकार अहङ्कार है, उपासनाकाण्ड का विघ्न जिस प्रकार साम्प्रदायिक विरोध है उसी प्रकार कर्म्मकाण्ड का विघ्न दम्भ है। कर्म्मकाण्डी इनका पाठ करनेसे अपने दम्भको भूलकर भक्त बन जाएंगे, उपासकगण अपने क्षुद्राशय और साम्प्रदायिकविरोधको भूलकर उदार और पराभक्तिके अधिकारी बन सकेंगे और तत्त्वज्ञानी के लिये तो ये पांचों ग्रन्थ उपनिषदों के सार रूप हैं। गृहस्थों के लिये ये पांच गीताएं परम मङ्गलकर और सन्यासियों के लिये अध्यात्मपथप्रदर्शक हैं। जिस प्रकार सन्यास-गीता प्रधानतः सकल सम्प्रदायके साधु सन्यासियों के हितार्थ प्रकाशित की गई; और जिसप्रकार श्रीगुरुगीता सकल प्रकारके साधकोंके हितार्थ की गई है, उसी प्रकार निम्न से निम्न कोटि के अधिकारी और उच्च से उच्च कोटि के अधिकारियों के लिये यह शम्भुगीता प्रकाशित हुई है इसके द्वारा चारों आश्रमकोंके साधक वृन्द समानरूप से लाभ उठावेंगे।

श्रीभारतधर्म महामण्डलके शास्त्रप्रकाश विभागके अन्य ग्रन्थों के अनुसार इस ग्रन्थरत्नके द्वितीयावृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है, जो समाजकल्याणके लिए हितकर और प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा।

श्रीकाशी धाम
गुरुपूर्णिमा संवत् २०४५ विक्रमी

श्री वृजमोहन दीक्षित
अध्यक्ष
श्रीभारतधर्ममहामण्डल, लहुराबीर
वा रा ण सी।

श्रीशम्भवे नमः ।

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठाङ्क

॥ श्रीशम्भवे नमः ॥



श्रीशम्भुगीता ।

॥ भाषानुवादसहिता ॥

धर्म्मनिरूपणम् ।

सूत उवाच ॥ १ ॥

हे गुरो ! वेदतत्त्वज्ञ ! कलिकल्मषनाशन ! ।
त्वयाऽऽध्यात्मस्य तत्त्वस्य ह्यधिदैवस्य च प्रभो ! ॥ २ ॥
नैकाः प्रकाशिका गीता ज्ञानरत्नैः प्रपूरिताः ।
प्रकाशकानि वेदानामर्थस्य च बहून्यलम् ॥३॥ ॥
श्रावयित्वा पुराणानि कृतकृत्यः कृतोऽस्म्यहम् ।
भवतैव पुरा प्रोक्तमेकदा माम्प्रति स्वयम् ॥ ४ ॥

सूतजी बोले ॥ १ ॥

हे वेदतत्त्ववेत्ता ! हे कलिकल्मषनाशन ! हे गुरो ! हे प्रभो ! आपने अध्यात्म तत्त्व और अधिदैव तत्त्वकी प्रकाशक ज्ञानरत्नोसे पूरित अनेक गीताएँ और वेदार्थप्रकाशक अनेक पुराणोंको भली भांति सुनाकर मुझे कृतकृत्य किया है। आपने स्वयं ही मुझसे

आवागमनचक्रस्य गतिं यश्चात्रबुध्यते ।
मुक्तः स एव कैवल्यं पदं प्राप्तुमलं त्विति ॥ ५ ॥
अतो मां कृपया नाथ ! शास्त्रमेवंविधं हितम् ।
निशामयस्व येनाहं ज्ञातुं शक्नोमि सत्त्वरम् ॥ ६ ॥
आवागमनचक्रस्य रहस्यं साम्प्रतं गतेः ।
अधि कुर्य्याञ्च मोक्षाख्यं यथा नूनं परम्पदम् ॥ ७ ॥

व्यास उवाच ॥ ८ ॥

प्रियशिष्य ! प्रसन्नोऽहं तव ज्ञानपिपासया ।
जगत्कल्याणसम्पत्त्यै प्रवृत्त्या चानिशं परम् ॥ ९ ॥
अतस्तुभ्यमहं सूतोपनिषत्साररूपिणीम् ।
अपूर्वां महतीं गीतां श्रावयिष्ये महामते ! ॥ १० ॥
यथा ज्ञानपिपासा ते शान्ता सामयिकी भवेत् ।
तापतप्तपिपासेव शीतलैर्गाङ्गवारिभिः ॥ ११ ॥

पहले एक बार कहा था कि जो आवागमनचक्रकी गतिको जान जाता हैं वही उससे मुक्त होकर कैवल्यपदका अधिकारी हो सकता है ॥ २-५ ॥ अतः हे नाथ ! कृपया मुझे ऐसा हितकर शास्त्र इस समय सुनावें जिससे आवागमनचक्रकी गतिके रहस्यको शीघ्र समझ सकूं और जिससे मुक्तिरूप उत्तम पदका अवश्य अधिकारी बन सकूं ॥ ६-७ ॥

श्रीव्यासजी बोले ॥८॥

हे प्रिय शिष्य ! मैं तुम्हारी ज्ञानपिपासा और अहर्निश जगत्कल्याणवृद्धिकी परम प्रवृत्ति से प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥ अतः हे महामते सूत ! मैं तुमको उपनिषदोंकी साररूप एक अत्यन्त अपूर्व गीता सुनाऊंगा जिससे तुम्हारी इस समयकी ज्ञानपिपासा इस प्रकार

पूर्वमेव मया प्रोक्त तुभ्यं सूत ! महात्मनः ! ।
प्रधानसृष्टिरूपिण्या मर्त्यसृष्टेर्नियामकः ॥ १२ ॥
आस्ते वर्णाश्रमो धर्म्मो नात्र काचिद्विचारणा ।
वर्णाश्रमाणां धर्म्माणां साहाय्यात् पितरोऽखिलाः॥१३॥
गतेः क्रमोदूर्ध्वगामिन्याः मानवानां विधायकाः ।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मस्य ह्रासे जाते कदाचन ॥ १४ ॥
पितॄणां लोकसाधिन्यां व्यवस्थायामुपस्थिता ।
बाधना सर्वथा तात ! लोकानां सुहृदस्तदा ॥ १५ ॥
देवर्षेर्नारदस्यैव सत्परामर्शतश्चिरम् ।
तपस्तप्तं हि तैर्घोरं लोककल्याणकाङ्क्षया ॥ १६ ॥
प्रसन्नस्तपसा तेषां शम्भुः श्रीभगवान् स्वयम् ।
सगुणेनाऽथ रूपेण प्रादुर्भूयोपदिष्टवान् ॥ १७ ॥
उपदेशं तमेवाद्य त्वामहं वच्मि शाम्भवम् ।
शम्भुगीताभिधानेन तं लोकेषु प्रचारय ॥ १८ ॥

तृप्त हो जायगी जिस प्रकार तापसे सन्तप्त प्राणीकी पिपासा शीतल गङ्गाजलसे तृप्त हो जाती है ॥ १०-११ हे महामना ! सूत ! मैंने तुमको पहलेही कहा है कि प्रधानसृष्टिरूपी मनुष्यसृष्टिका नियामक वर्णाश्रमधर्म है, इसमें कुछ विचारनेकी बात नहीं है । वर्णाश्रमधर्मकी सहायतासे मनुष्यकी क्रमोर्द्धवगतिके विधायक सब पितृगण हैं । किसी समय वर्णाश्रमधर्ममें शिथिलता हो जानेसे पितरोंकी लोकहितकर व्यवस्थामें सर्वथा बाधा हुई थी । हे तात ! उस समय सर्वलोकसुहृत् देवर्षि नारदजीके ही सत्परामर्शसे पितरोंने बहुत दिनों तक लोगोंके कल्याणकी इच्छासे ही घोर तप किया था ॥ १२ १६ ॥ अनन्तर उनके तपसे प्रसन्न होकर श्रीभगवान् शम्भुने उनके सम्मुख स्वयं सगुणरूपमें आविर्भूत होकर जो उपदेश दिया था ॥ १७ ॥ उसी शाम्भव उपदेश को अभी तुमसे मैं कहता हूँ तुम जगत्में उसको शम्भुगीता नामसे प्रचार

अस्ति दैवासुरी सृष्टिर्लोकानां सुहृदेकतः ।
चतुर्धा भूतसङ्घानां प्राकृती सृष्टिरन्यतः ॥ १९ ॥
स्वाधीना चैतयोर्मध्ये सृष्टिः पूर्णाङ्गसंयुता ।
कर्म्माधिकारिणी याऽऽस्ते सृष्टिः सैवास्ति मानवी॥२०॥
यद्धर्म्मातिप्रभावेण मर्त्त्यसृष्टेर्गतिर्ध्रुवम् ।
क्रमोर्द्ध्वगामिनी तिष्ठेन्मानवानाञ्च योनितः ॥ २१ ॥
प्राणिनः पतनाद्रक्षेद्धर्म्मो वर्णाश्रमोऽस्त्यसौ ।
नात्र कश्चन सन्देहो विद्यते सूत ! तात ! भोः ॥ २२ ॥
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मेण पितरो वर्द्धिता भृशम् ।
जीवेभ्योऽभ्युदयं शश्वद्ददते नेह संशयः ॥ २३ ॥
वर्णाश्रमाख्यधर्मेषु शैथिल्ये समुपस्थिते ।
कर्त्तुं कर्म्मोपयुक्तासु स्वाधीनास्वपि सृष्टिषु ॥ २४ ॥
जायते मानवानां भोः सूत ! नूनं विपर्य्ययः ।
स्वाधीनसृष्टिपुञ्जेषु ध्रुवं जाते विपर्य्यये ॥ २५ ॥

करो ॥ १८ ॥ हे लोकसुहृत ! एक ओर देवासुर-सृष्टि और दूसरी ओर चतुर्विध भूतसङ्घकी प्राकृत सृष्टि है ॥ १९ ॥ और इन दोनों के बीचमें पूर्णावयव और कर्म्मकी अधिकारिणी जो स्वाधीन सृष्टि है वही मनुष्य सृष्टि है जो जिस धर्म्मके अत्यन्त प्रभावसे मनुष्यसृष्टिकी क्रमोर्द्ध्वगामिनी गति निश्चय बनी रहती है और जीवोंको मनुष्ययोनिसे पतन होने नहीं देता वह वर्णाश्रम धर्म्म है, हे तात सूत ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २१-२२ ॥ वर्णाश्रमधर्म्मसे अत्यन्त संवर्द्धित होकर पितृगण जीवों को सर्वदा अभ्युदय प्रदान किया करते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥ हे सूत ! वर्णाश्रमधर्म्मके शिथिल हो जाने से कर्म्म करनेकी उपयोगिनी स्वाधीन मानव सृष्टिमें भी अवश्य विर्य्यय होता है; हे प्राज्ञ

विप्लवः सृष्टिषु प्राज्ञ ! भवेत्सर्वविधास्वपि ।
भीषणोदर्कमेवैतद्दृष्ट्वा पितृगणैः खलु ॥ २६ ॥

तपस्तप्तं पुरा घोरं विश्वकल्याणसम्पदे ।
स्वतपस्याप्रभावेण तोषितो भगवांश्च तैः ॥ २७ ॥

सर्वशक्त्यालयः शम्भुः सर्वलोकहितप्रदः ।
अन्वभावि तदा तात ! तवः पितृगणैश्च तैः ॥ २८ ॥
सप्तानां स्वरसङ्घानां स्वरूपस्य समष्टितः ।
ओङ्कारध्वनितो दिव्यं कोटिसूर्य्याधिकप्रभम् ॥ २९ ॥

एकं प्रादुरभूज्ज्योतिरुज्ज्वलं सुमनोहरम् ।
तज्ज्योतिरन्तरा शम्भुरासीनः प्रणवासने ॥ ३० ॥

प्रादुर्भूतो महादेवो भगवाँल्लोकशङ्करः ।
शुभ्रैस्तदङ्गवर्णैस्तु गिरयो राजता अलम् ॥ ३१ ॥

अमिता अवधीर्य्यन्ते त्रिभिर्नेत्रैरलङ्कृतः ।
बिभ्रद्दिव्यं जटाजूटं भस्मभूषित विग्रहः ॥ ३२ ॥

सूत ! स्वाधीनसृष्टिसमूहमें विपर्य्यय होनेसे ही सब प्रकारकी सृष्टिमें भी विप्लवव होनेकी अवश्य सम्भावना रहती है । इसी भीषण परिणामको देखकर ही पितरोंने विश्वकल्याण-सम्पादनके लिये पुरा कालमें घोर तपस्याकी थी और अपनी तपस्याके प्रभाव से उन्होंने सर्वशक्तिमान् सर्वलोकहितकर भगवान् शम्भुको प्रसन्न किया था ! हे तात ! उस समय उन सब पितरोंने अनुभव किया कि सप्त स्वरों के रूप की समष्टिरूप ओङ्कारध्वनिसे एक दिव्य कोटिसूर्य्यसे भी अधिक प्रभावान् समुज्वल सुमनोहर ज्योतिः प्रकट हुई । उस ज्योतिके अन्तर्गत प्रणावासनासीन लोकशङ्कर महादेव भगवान् शम्भु आर्विभूत हुए । उनके शुभ्र अङ्गवर्णोंसे अगणित रजत गिरि अत्यन्त तिरस्कृत हो रहे थे, तीन नेत्रोंसे सुशोभित थे, दिव्य जटा-

त्रिशूलं खर्परं शृङ्गी दधानो डमरुन्तथा ।
चतुर्भिर्दिव्यहस्तैः स्वैः नागज्ञोपवीतवान् ॥ ३३ ॥
व्याघ्रचर्माम्बरं दिव्यं वसानः शोभते भृशम् ।
तद्वामाङ्के समासीना षोडशी सर्वसुन्दरी ॥ ३४ ॥
पूर्णशक्तिमयी श्यामा तस्य वैभवपूर्णताम् ।
सम्पादयन्ती सततं मनोज्ञा राजतेतराम् ॥ ३५ ॥
पाशाङ्कुशौ च विभ्राणा लोचनत्रयभूषिता ।
कल्याणं जगतां कर्त्तुं मन्दस्मितमनोरमा ॥ ३६ ॥
दिव्यमेवंविधं रूपं सगुणं पितरस्तदा ।
आलोक्याऽऽशान्विताः सन्तो बद्धहस्ताः ययाचिरे ॥३७॥

पितर ऊचुः ॥ ३८ ॥

विश्वेश्वर ! वयं भाविविश्वदुःखेन कातराः ।
निराकर्त्तुं हि तद्दुःखमापन्नाः शरणं तव ॥ ३९ ॥

जूटधारी भस्मभूषितकलेवर अपने चारों दिव्य हाथोंमें डमरू खप्पर त्रिशूल और सींग धारण किये हुये हैं, अनन्त नागका जिनके यज्ञोपवीत है, दिव्य व्याघ्रचर्म्मरूपी वस्त्रको पहने हुए हैं जिससे बहुतही सुशोभित हो रहे हैं। उनके वामाङ्कपर बैठी हुई सर्वसुन्दरी पूर्णशक्तिमयी मनोहारिणी षोडशी श्यामा उनके वैभवकी पूर्णताको निरन्तर सम्पादित करती हुई अत्यन्त सुशोभित है ॥ २४-३५ ॥ वे पाश और अङ्कुशको धारण किये हुई हैं, त्रिलोचनसे सुशोभित हैं और जगत्के कल्याण करनेके लिये ईषत् हास्यसे शोभायमान है ॥ ३६ ॥ उस समय ऐसे दिव्य सगुणरूपको देखकर पितृगण आशान्वित होकर हाथोंको जोड़कर प्रार्थना करने लगे ॥ ३७ ॥

पितृगण बोले ॥८ ॥

हे विश्वेश्वर ! हम जगत् के भावी दुःखसे कातर हो उसके

साम्प्रतं मानवे लोके करुणावरुणालय ! ।
धर्म्मे विप्लवसद्भावात् प्रभो ! धर्म्मस्य तात्त्विकम् ॥४०॥
सार्वभौमस्वरूपं वै लुप्तप्रायं प्रजास्वभूत् ।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मेभ्यः प्रजाश्रद्धोपसंहृतेः ॥ ४१ ॥
आर्य्यजातेः किलार्य्यत्वं लुप्तप्रायोऽभवच्च तत् ।
भयभीता वयं जाता अतः शम्भो ! दयार्णव ! ॥ ४२ ॥
कस्मिंश्चित्समये दैव्यां सृष्टौ हि विप्लवे सति ।
यदि देवासुरे युद्धेऽसुराणां विजयो भवेत् ॥ ४३ ॥
तदा शम्भो ! भवत्सृष्टौ भवेन्नूनं विपर्य्ययः ।
अतस्त्वच्छरणापन्न वयं भीता अभूम ह ॥ ४४ ॥
उपदिश्ययथायोग्यमस्मान्निःसाध्वसान् कुरु ।
एषा नः प्रार्थना नाथ ! साञ्जलिस्त्वत्पदाम्बुजे ॥ ४५ ॥

सदाशिव उवाच ॥ ४६ ॥

अपनोदयत स्वीयं चित्तस्थं भयमुल्वणम् ।

निराकरणकेलिये ही आपके शरणापन्न हुए हैं ॥३०॥ हे करुणावरुणालय प्रभो ! इस समय मनुष्यलोकमें धर्म्म विप्लव हो जानेसे धर्म्मका यथार्थ सार्वभौमस्वरूप प्रजामें प्रायः लुप्त ही हो गया है और वर्णाश्रमधर्म्मकी ओर से प्रजाकी श्रद्धा उठ जानेसे ही आर्य्यजातिका आर्य्यत्व लुप्तप्राय हो गया है इस कारण हे दयार्णिव शम्भो ! हम भयभीत हुए हैं ॥४१-४२॥ कालान्तरमें दैवी सृष्टिमें विपल्व होनेपर यदि देवासुर संग्राममें असुरोंका विजय हो जाय तो हे ! शम्भो आपकी सृष्टिमें अवश्य विपर्य्यय होगा इस कारण हम भयभीत होकर आपके शरणागत हुए हैं ॥ ४३-४४ ॥ हमको यथायोग्य उपदेश देकर निर्भय करें, हे नाथ ! यही आपके चरणकमलोंमें हम लोगोंकी साञ्जलि प्रार्थना है ॥ ४५ ॥

श्रीसदाशिव बोले ॥ ४६ ॥

हे महानुभावो ! अपने चित्तके उत्कट भयको आप दूर करो

उपदेशेषु मे भूयः श्रद्धां कुरुत सत्तमाः! ॥ ४७ ॥
दूरीभूते भये वश्च जगद्भीतिर्विनङ्क्ष्यति।
भवन्तो हि यतस्सन्ति स्थूलसृष्टेर्नियामकाः ॥ ४८ ॥
स्थूलसृष्टेश्च धात्र्यस्ति सूक्ष्मसृष्टिर्न संशयः।
प्राणिनः स्थूलदेहं हि प्राप्तवन्तो यथाविधम् ॥ ४९ ॥
तादृगेव प्रकुर्वन्ति कर्म्मेह पितरो ध्रुवम्।
नात्र कश्चन सन्देहः सत्यं सत्यं वदामि वः ॥ ५० ॥
भवत्स्वतः प्रसीदत्सु मानवानां निरन्तरम्।
स्थूलदेहा जनिष्यन्ते नूनं धर्म्मसहायकाः ॥ ५१ ॥
पितरो निश्चितं लोके धर्म्मगाम्भीर्य्यलोपतः।
धार्म्मिको विप्लवो घोर उपातिष्ठत साम्प्रतम् ॥ ५२ ॥
धार्मिके विप्लवे जाते धर्म्मं गौणं विदन्त्यहो।
अहम्मन्या जनाः सर्व्वे पाषण्डे पण्डिता भृशम् ॥ ५३ ॥

और मेरे उपदेशों पर श्रद्धान्वित हो ॥ ४७ ॥ आपका भय दूर होने पर जगत्‌का भी भय दूर होगा क्योंकि आप लोग ही स्थूल सृष्टिके नियामक हैं ॥ ४८ ॥ स्थूलसृष्टि निःसन्देह सूक्ष्मसृष्टिकी धात्री है, जिस प्रकारके स्थूलशरीरको जीव प्राप्त होते हैं हे पितृगण! निश्चय उसी श्रेणीके कर्म वे यहां किया करते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं मैं आपलोगोंसे सत्य २ कहता हूँ ॥ ४९–५० ॥ अतः आप सबोंके प्रसन्न होनेसे निरन्तर ही मनुष्योंके स्थूलशरीर धर्मसहायक उत्पन्न होंगे ॥ ५१ ॥ हे पितृगण! संसार में इस समय धर्मकी गंभीरताके लोप होनेसे निश्चय घोर धर्मविप्लव उपस्थित हुआ है ॥ ५२ और धर्मविप्लव उपस्थित होनेसे अहो धर्मको अहम्मन्य और पाखण्डमें पण्डित सब लोग अत्यन्त गौण समझने लगे हैं ॥ ५३ ॥ और शाश्वत धर्मके सार्वभौम स्वरूपको मनुष्य तो

शाश्वतस्य च धर्म्मस्य सार्वभौमस्वरूपकम् ।
जानीयुर्मानवाः किं नु धर्म्माचार्य्यगणा अपि ॥ ५४ ॥
अज्ञात्वा तत्स्वरूपं हि पथो निर्ममिरे पृथक् ।
कुमार्गमवलम्बन्ते भ्रान्ता यैरेव मानवाः ॥ ५५ ॥
धर्म्मगाम्भीर्य्यनाशेन मानवानाञ्च बुद्धयः ।
वर्हिमुखीनाः सम्वृत्ता इन्द्रियेषु परायणाः ॥ ५६ ॥
निमज्जेयुर्यथा पूर्णे सुगंभीरे जलाशये ।
अनेकेऽपि गजाः सम्यक् किन्तु तस्य जलं यदि ॥ ५७ ॥
क्षेत्रे प्रसारयेत्क्वापि महासीम्नि पितृव्रजाः ! ।
शशकोऽपि तदा तत्र निमज्जेन्नैव कर्हिचित् ॥ ५८ ॥
आसीज्जलाशये यावत्तावदेव जलन्तु तत् ।
किन्तु शक्तौ विपर्य्यासो भवेद्गाम्भीर्य्यनाशतः ॥ ५९ ॥
समष्टिव्याष्टिरूपाभ्यां सृष्टेः सन्धारिका मम ।
शक्तिर्नियामिका सैव ध्रुवं धर्म्मः सनातनः ॥ ६० ॥
तत्सनातनधर्म्मस्य पादश्चत्वार आसते ।
साधारणविशेषौ हि तथाऽसाधारणापदौ ॥ ६१ ॥

क्या जाने धर्माचार्यों ने भी उसके स्वरूप को न ससझकर स्वतन्त्र २ पन्थ निर्माण किये हैं जिनसे ही भ्रान्त होकर मनुष्य कुपथगामी वनते हैं ।।५४-५५।। और धर्मकी गंभीरताका नाश होनेसे ही मनुष्योंकी बुद्धि वहिर्मुखीन और इन्द्रियपरायण हो गई है ।। ५६ ।। हे पितृगण ! जिसप्रकार जलपूर्ण सुगभीर जलाशय में अनेक हस्ती भी अच्छी तरह डूब जा सकते हैं परन्तु उस जलाशय का जल यदि किसी वड़े मैदान में फैला दिया जाय तो उसमें खरगोश भी कभी नहीं डूव सकता ।। ५७ ५८ ।। वह जल जितना जलाशय में था उतना ही तो रहता है परन्तु उसकी गम्भीरता नष्ट होने से उसकी शक्ति में फेर पड़ जाता है ।। ५९ ।। समष्टि और व्यष्टिरूप से सृष्टिके धारण करने वाली जो मेरी नियामिका शक्ति है उसको सनातन धर्म कहते हैं ।। ६० ।। उस सनातन धर्म के चारपाद हैं, यथा-साधारण धर्म,

सार्वभौमो यतो धर्म्मः सर्वलोकहितप्रदः।
ददात्यभ्युदयं नित्यं सुखं निःश्रेयसन्तथा ॥ ६२ ॥
निखिलं धर्म्मशक्त्यैव विश्वमेतच्चराचरम्।
क्रमेणाभ्युदयं लब्ध्वा सरत्यग्रे हि माम्प्रति ॥ ६३ ॥
ज्ञानिनो मम भक्ताश्च धर्म्मशक्त्यैव सत्वरम् ॥
तत्त्वज्ञानस्य सहाय्याल्लभन्ते मुक्तिमुत्तमाम् ॥ ६४ ॥
शाश्वतस्यास्य धर्म्मस्य यावत्प्रादुर्भविष्यति।
सार्वभौमवस्रूपं हे पितरो भाग्यशालिनः! ॥ ६५ ॥
जनानां क्षुद्रता लोके तावत्येव विनङ्क्ष्यति।
साधारणस्य धर्म्मस्य तत्त्वतो हृदङ्गमम् ॥ ६६ ॥
सार्वभौमस्वरूपं हिकर्त्तुमर्हं न संशयः।
पालनीयाः सदाचारा आर्य्यजातीयिमानवैः ॥ ६७ ॥
वर्णाश्रमीयधर्म्मस्य विशेषस्य तथैव च।
यतो वर्णाश्रमैर्धर्म्मैर्विहीना सर्वथा ननु ॥ ६८ ॥

विशेष धर्म, असाधारण धर्म और आपद्धर्म्म ॥ ६१ ॥ धर्म सार्वभौम और सर्वलोकहितकर होने से वह निरन्तर अनायास अभ्युदय और निःश्रेयस प्रदान करता है ॥ ६२ ॥ यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त विश्व धर्मकी शक्तिसे ही क्रमशः अभ्युदय प्राप्त करके ही मेरी ओर अग्रसर होता है ॥ ६३ ॥

और मेरे ज्ञानी भक्तगण धर्म्मकी ही शक्तिद्वारा तत्त्वज्ञानकी सहायतासे उत्तम निःश्रेयसको शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ६४ ॥ हे भाग्यशाली पितृगण! इस सनातन धर्म्म का सार्वभौम स्वरूप जितना प्रकट होगा संसारमें मनुष्योंकी क्षुद्रता उतनी ही नष्ट होगी। तत्त्वतः साधारणधर्म्मका सार्वभौम स्वरूप निःसन्देह हृदयङ्गम करने योग्य है और उसी प्रकार वर्णाश्रमसम्बन्धी विशेष धर्म्मके सदाचार भी आर्य्यजातीय मनुष्यो से पालन कराने योग्य हैं, क्योंकि

असौ सृष्टिर्मानवानां कालिकायाः प्रभावतः ।
प्रकृतेर्मे लयं याति कुत्रचित्समये स्वतः ॥ ६९ ॥
धत्ते रूपान्तरं वासौ नात्र कार्य्या विचारणा ।
वर्णाश्रमाणां धर्म्माणां बीजरक्षाप्रभावतः ॥ ७० ॥
मर्त्यानां रक्षितः पन्थाः स्तात् क्रमाभ्युदयप्रदः ।
शाश्वतस्य हि धर्म्मस्य ज्ञानं स्यात्तेन कर्हिचित् ॥ ७१ ॥
वर्णधर्म्मं यतो विज्ञाः प्रवृत्ते रोधकं जगुः ।
निवृत्तेः पोषकञ्चैव धर्म्ममाश्रमगोचरम् ॥ ७२ ॥
अतो वर्णाश्रमाख्यस्य धर्म्मस्यैव सुरक्षणात् ।
रक्षिता पितरो वो हि शक्तिः सम्पत्स्यते शुभा ॥ ७३ ॥
साधारणस्य धर्म्मस्य विशेषस्य तथैव च ।
कियन्तीर्वर्णयाम्यद्य वृत्तीर्युष्माकमन्तिके ॥ ७४ ॥
श्रूयन्तां ता भवद्भिस्तु दत्तचित्तैः शनैः शनैः ।
धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ ७५ ॥

वर्णाश्रमधर्म्मरहित यह मनुष्यसृष्टि स्वतः मेरी प्रकृति कालीके प्रभाव से किसी समयान्तर में सर्व्वथैव लयको प्राप्त हुआ करती है; ॥६५–६९॥ अथवा वह रूपान्तर को धारण कर लिया करती है, इसमें कोई विचारकी बात नहीं है। वर्णाश्रम धर्म्मकी बीज रक्षाके प्रभावसे मनुष्योंकी अभ्युदय देनेवाली शैली की रक्षा होती है, उससे किसी समय सनातन धर्म्मका ज्ञान होता है ॥७०-७१॥ क्योंकि हे विज्ञ पितृगण ! वर्णधर्म्म प्रवृत्तिरोधक और आश्रमधर्म्म निवृत्तिपोषक कहा जाता है ॥ ७२॥ इसलिये हे पितृगण ! वर्णाश्रमधर्म्मकी रक्षाके द्वारा ही तुम्हारी ही शुभ शक्तिरक्षित होगी ॥ ७३ ॥ अब साधा-रणधर्म्म और विशेषधर्म्मकी कुछ वृत्तियोंका वर्णन आपलोगके सामने करता हूँ आपलोग दत्तचित्त होकर उनको शनैः शनैः सुनें

धीर्विद्या सत्यमक्रोध औदार्य्यं समदर्शिता ।
परोपकारनिष्कामभावप्रभृतयः शुभाः ॥ ७६ ॥
साधारणस्य धर्म्मस्य विद्यन्ते वृत्तयो ध्रुवम् ॥ ७७ ॥
ब्रह्मचर्य्यञ्च दाम्पत्यं निवासो निर्जने वने ।
त्यागो ह्यध्यापनञ्चैव याजनञ्च प्रतिग्रहः ॥ ७८ ॥
धर्म्मयुद्धं प्रजारक्षा वाणिज्यं सेवनादयः ।
विशेषस्यापि धर्म्मस्य सन्तीमाः खलु वृत्तयः ॥ ७९ ॥
साधारणस्य धर्म्मस्यावयवाः कीर्त्तिता यथा ।
विशेषस्यापि धर्म्मस्य तथाङ्गानि पृथक् पृथक् ॥ ८० ॥
उपाङ्गान्यपि धर्म्मस्य वर्त्तन्ते भूरिशो ध्रुवम् ।
देशकालादिवैचित्र्यादुपाङ्गं ह्येकमेव च ॥ ८१ ॥
अङ्गानां नन्वनेकेषामुपाङ्गं स्यादसंशयम् ।
अत्यन्तं वर्त्तते विज्ञाः ! धर्म्मस्य गहना गतिः ॥ ८२ ॥
जायते भावसाहाय्याद्भूतिदाः ! अन्तरं बहु ।
सर्वधर्म्मस्वरूपेषु सत्यं सत्यं ब्रवीमि वः ॥ ८३ ॥

॥७४-७५॥ धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध, उदारता, समदर्शिता, परोपकार, निष्कामभाव आदि साधारण धर्म्मकी ही शुभ वृत्तियां हैं ॥७६-७७॥ और ब्रम्हचर्य्य दाम्पत्य निर्जनवनवास, त्याग, पाठन, याजन, प्रतिग्रह, प्रजापालन, धर्म्मयुद्ध, वाणिज्य सेवा आदि, विशेष धर्म्मकी येहि वृत्तियां हैं ॥७८-७९॥ जिसप्रकार साधारण धर्म्म के अङ्ग कहे गये हैं उसी प्रकार विशेष धर्म्मके भी अलग अलग अङ्ग हैं ॥८०॥ धर्म्मके उपाङ्ग भी अनेक ही हैं और देशकाल पात्रकी विचित्रताके अनुसार एक ही उपाङ्ग अनेक अंगोंका निःसंदेह ही उपांग हो सकता है। हे विज्ञो ! धर्म्मकी गति अति गहन है ॥८१-८२॥ हे पितृगण ! भावकी सहायता सब धर्मोंके स्वरूपों में अनेक अन्तर हो जाया करता है, यह

भावतत्त्वस्य विज्ञानं पूर्णरूपेण वेदितुम् ।
अन्तःकरणविज्ञनारूपं वच्मि वोऽग्रतः ॥ ८४ ॥
मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमेतच्चतुर्विधम् ।
अन्तकरणस्तीति वित्त यूयं पितृव्रजाः ! ॥ ८५ ॥
मनसोऽन्तर्विभागोऽस्ति चित्तश्चाहङ्कृतिर्धियः ।
मायापाशैर्दृढैर्बद्ध्वा योषित् संसारगोचरम् ॥ ८६ ॥
यथा संसारिभिर्जीवैः कार्य्यं कारयतेऽनिशम् ।
तथा चित्तं मनो बुद्धिमहङ्कारो नियम्य च ॥ ८७ ॥
कार्य्यं कारयते शश्वन्ननावैचित्र्यसङ्कुलम् ।
संस्कारानुचरा जीवा वर्त्तन्ते सर्वथा खलु ॥ ८८ ॥
वासनोत्पन्नसंस्कारा अभिवध्नन्ति प्राणिनः ।
आसक्तिरेव मूलञ्च वन्धनस्यास्य कारणम् ॥ ८९ ॥
संस्कारो वासनजन्यः संस्कारात्कर्म्म जायते ।
वासनोत्पद्यते भूयः कर्म्मणो नात्र संशयः ॥ ९० ॥

मैं आपलोगोंको सत्य सत्य कहता हूँ ॥ ८३॥ भावतत्वके विज्ञान-को पूर्णरूपसे स्पष्ट करनेके अर्थ अन्तःकरणविज्ञानका स्वरूप आपलोगोंके समीप कहता हूँ ॥ ८४ ॥ हे पितृगण ! अन्तःकरणके चार भेद हैं, ऐसा आपलोग जानें, यथा--मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ॥८५॥ चित्त मनका अन्तर्विभाग है और अहङ्कार बुद्धिका अन्तर्विभाग है। संसारी जीवोंको जिसप्रकार स्त्री दृढ़ मायार-ज्जुओंसे बांधकर उनसे अहर्निश संसारका कार्य कराती है उसी प्रकारचित्त मनको और अहङ्कार बुद्धिको नियमन करके निरन्तर नाना वैचित्र्यपूर्ण काम कराया करते हैं। जीव सर्वथा ही संस्कारों के दास हैं ॥ ८६--८८ ॥ वासना से उत्पन्न संस्कार जीवोंको जकड़ रखते, आसक्ति ही इस बन्धन का मूलकारण है ॥ ८९ ॥ वासनासे संस्कार होता है, संस्कार से कर्म्म होता है, कर्म्मसे

वासनायाः पुनर्विज्ञाः ! संस्कारो जायते ध्रुवम् ।
सदैवं वासनाचक्रं जीवानाञ्च गतागतम् ॥ ९१ ॥
घूर्णायमानमस्तीह चक्रनेमिर्यथ रथे ।
पूर्वजन्मार्ज्जिता यादृक् कर्म्मसंस्कारसन्ततिः ॥ ९२ ॥
एतज्जन्मकृतानां वा कर्म्मणां यादृशी स्मृतिः ।
अङ्किता जीवचित्ते स्यादासक्तिः स्याद्धि तादृशी ॥९३॥
तदासक्त्यनुरूपेषु विषयेषु निरन्तरम् ।
प्रसज्जन्तेऽभितो जीवाः तदासक्त्यनुसारतः ॥ ९४ ॥
आसक्तिश्चित्तसाहाय्यान्मनस्युत्पद्यते ध्रुवम् ।
दम्पत्योः सङ्गमाल्लोके मनश्चित्तस्वरूपयोः ॥ ९५ ॥
आसक्तेर्जायते जन्म नात्र कार्य्या विचारणा ।
प्रजातन्तुं यथा पुत्रः संरक्षंल्लभते पितुः ॥ ९६ ॥
तस्याधिकारमासक्तिर्विभ्राणा विषयाँस्तथा ।
सृष्टिं वर्द्धयते शश्वदिह दैवीञ्च मानवीम् ॥ ९७ ॥

पुनः वासना उत्पन्न होती है, हे विज्ञो ! वासनासे पुनः संस्कार ही उत्पन्न होता है इस संसारमें इस प्रकारसे वासनाका चक्र और जीवका आवागमन रथमें चक्रनेमिके समान सदा घूर्णायमान रहता है। पूर्वजन्मार्जित कर्म्मसंस्कारसमूह अथवा इस जन्मके कर्म्मकी स्मृति जैसी जीवके चित्त में अङ्कित रहती है उसीप्रकारकी आसक्ति-हुआ करती है ॥९०-९३॥ उसी आसक्तिके अनुसार जीव उसी आसक्ति सम्बन्धीय विषयोंमें निरन्तर चारों ओरसे जकड़ें रहते हैं ॥९४॥ आसक्ति चित्तकी सहायतासे मनमेंही उत्पन्न होती है। मन और चित्तरूपी स्त्री पुरुषके सङ्गमसे संसारमें आसक्तिका जन्म होता है इसमें विचार नहीं करना चाहिये। पुत्र जिसप्रकार पिताके प्रजान्तु रक्षा करके पिताके अधिकारको प्राप्त होता है उसी प्रकार आसक्ति इस संसार में विषयोंको धाररण करती हुई दैवी और मानवी

बुद्धिराज्यस्य सिद्धान्तमपरं वित्त किन्त्वहो ! ।
बुद्ध्यहङ्कारसंयोगाद्भावत्त्वोदयो भवेत् ॥ ९८ ॥

भावोऽपि द्विविधोज्ञेयः शुद्धाशुद्धप्रभेदतः ।
भावोऽशुद्धस्तयोर्बुद्धिं विधत्ते विषयाकृतिम् ॥ ९९ ॥

शुद्धो भावः क्रमाच्चित्तं कुर्वाणो निर्मलं तथा ।
बुद्धिं ब्रह्मपदं नूनं नयञ्छान्ति प्रयच्छति ॥ १०० ॥

नन्वासक्तेर्वशा जीवा अथवा भावनोदिताः ।
एतत्तत्त्वद्वयस्यैव साहाय्यात्कर्म्म कुर्वते ॥ १०१ ॥

कायिकं वाचिकञ्चैव तथा मानसमेव च ।
आसक्तौ किन्तु वैवश्यं भावे स्वातन्त्र्यमस्ति ह ॥१०२ ।

आनन्त्याद्विषयाणान्तु बहुशाखासमन्विता ।
आसक्तिर्विद्यते नूनं शुद्धो भावो न तादृशः ॥१०३॥

एकाद्वैतदशां नेतुमीष्टेऽसौ नात्र संशयः ।
यतो ब्रह्मपदं विज्ञाः ! विद्यतेऽद्वैतमेव हि ॥ १०४ ॥

सृष्टिको विशेष रूपसे अग्रसर करती है ॥९५-९७॥ अहो ! किन्तु बुद्धिराज्यका सिद्धान्त और है ऐसा जानो। अहङ्कार और बुद्धिके संगमसे भावतत्त्वका उदय होता है ॥ ९८ ॥ शुद्ध और अशुद्ध भेदसे भाव भी द्विविध हैं सो जानो। उनमें से अशुद्धभाव बुद्धिको विषय-वत् कर देता है ॥ ९९ ॥ और शुद्ध भाव क्रमशः अन्तःकरणको मल रहित करता हुआ बुद्धिको ब्रह्मपदमें पहुंचाकर ही शान्ति प्रदान करता है ॥१००॥ जीव यातो आसक्ति के वशीभूत हो या भावप्रणो-दित होकर ही, इन्हीं दो तत्त्वोंकी सहायतासे ही शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्म करते हैं। आसक्तिमें विवशता है परन्तु भाव--में स्वाधीनता है ॥१०१--१०२॥ आसक्ति बहुशाखायुक्त ही है क्योंकि विषय अनन्त हैं परन्तु शुद्धभाव वैसा नहीं है ॥१०३॥ वह एक अद्वैत दशाको प्राप्त करा सकता है, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि हे विज्ञो !

आसक्त्या कार्य्यकर्त्तारो जीवाः प्रारब्धयोगतः ।
श्रीगुरोर्देवतानां वा प्रसादादेव सर्वथा ॥ १०५ ॥
पाशतुल्याद्धि विषयात् स्वान्निवर्त्तयितुं क्षमाः ।
अन्यथा विषये तेषां प्रसक्तिस्तत्र निश्चिता ॥ १०६ ॥
किन्तु शुद्धस्य भावस्य साहाय्यात्कार्य्यकारिणः ।
भाग्यवन्तो न सज्जन्ते विषयेषु कदाचन ॥ १०७ ॥
उत्तरोत्तरमेतेषां सर्वथोर्द्ध्वगतिर्भवेत् ।
संगृहीता हि संस्काराः पूर्वजन्मनि यादृशाः ॥ १०८ ॥
आसक्तिस्तादृशी जीवे प्रादुर्भविष्यति निश्चितम् ।
तस्या एवानुसारेण जीववर्गे जनिष्यते ॥ १०९ ॥
हेयोपादेयताज्ञानं नास्ति कोऽप्यत्र संशयः ।
आसक्तिमूलके चैवमसद्भावे प्रसज्य वै ॥ ११० ॥
जीवो बन्धदशातः स्वं रक्षितुं नैव शक्ष्यति ।
सम्बद्धेन मया सार्द्धं सद्भावेन तु संयुतः ॥ १११ ॥

ब्रह्मपद अद्वैत ही है ॥१०४॥ आसक्तिसे काम करनेवाले जीव सर्वथा प्रारब्धकी सहायता, श्रीगुरुदेवकी कृपा या देवताओंकी कृपासे ही पाशतुल्य विषयसे अपनेको बचा सकते हैं, नहींतो उसमें उनका फसना निश्चित है ॥ १०५--१०६॥ परन्तु शुद्धभावकी सहायतासे कर्म्म करनेवाले भाग्यवान् विषयोंमें कदापि नहीं फँसते ॥ १०७॥ उत्तरोत्तर उनकी सर्वथा ऊर्द्धवगति होती रहती है। जीवने पूर्व जन्ममें जैसे संस्कार संग्रह किये हैं उसीके अनुसार उसमें आसक्ति प्रकट होगी और उसी आसक्तिके अनुसार जीवोंमें हेय और उपादेयका विचार उत्पन्न होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है और इसप्रकार से आसक्तिमूलक असद्भाव में फँसकर ही जीव बन्धन-दशासे अपनेको बचा नहीं सकेगा। परन्तु हे विज्ञो! सत्‌भाव जिसका सम्बन्ध मेरे साथ है उसके साथ युक्त होकर निरन्तर

यत्कर्म्म कुरुते जीवः सततं भावशुद्धितः ।
हेतुतां वहते विज्ञाः ! मुक्तेस्तत्कर्म्म निश्चितम् ॥११२॥
पापकर्म्माप्यतः पुण्यं सद्भावेन समन्वितम् ।
एष मे निश्चयो विज्ञाः ! एषा मे धारणाऽस्त्यलम्॥११३॥
धर्म्मोऽस्ति मम सूक्ष्मातिसूक्ष्मशक्तिः पितृव्रजाः ! ।
नाऽयं स्थूलपदार्थोऽस्ति निखिलेन्द्रियगोचरः ॥ ११४ ॥
नास्य स्थूलपदार्थेन सम्बन्धः स्थूल इष्यते ।
भावेन हि यदाऽधर्म्मे धर्म्मेण परिणम्यते ॥ ११५ ॥
अधर्म्मस्यापि धर्म्मे वै परिणामो यदा भवेत् ।
एष एव तदा धर्म्म सूक्ष्मत्व परिचायकः ॥ ११६ ॥
मम शक्तिर्द्विधा भिन्ना विद्याऽविद्याप्रभेतः ।
धर्म्माधर्म्मसुसम्बन्धस्ताभ्यां सार्द्धं हि विद्यते ११७ ॥
एतस्यानुभवं सम्यग्धर्म्मज्ञा एव कुर्वते ।
संवर्द्ध्यत आसक्तिर्नन्वसद्भावमूलिका ॥ ११८ ॥

भावशुद्धि द्वारा जो कर्म जीव करता है वह कर्म अवश्य ही मुक्ति का कारण होता है ॥ १०८-११२ ॥ इस कारण सद्भावसे मुक्त पापकर्म भी पुण्य हो जाता है हे विज्ञो ! यह मेरा निश्चय है। और मेरी यही धारणा है ॥ ११३ ॥ हे पितृवृन्दो ! धर्म्म मेरी सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्ति है, यह सब इन्द्रियोंसे जानने योग्य स्थूल पदार्थ नहीं है ॥ ११४ ॥ और न इसका स्थूल पदार्थसे स्थूल सम्बन्ध है। जब भावसे ही धर्म अधर्म और अधर्म धर्ममें निश्चय-ही परिणत होता है तो यही धर्मके सूक्ष्म स्वरूपका परिचायक है ॥ ११५-११६ ॥ मेरी शक्तिके विद्या और अविद्यानामी दो भेदोंके साथ ही धर्म और अधर्मका सम्बन्ध है ॥ ११७ ॥ इसका धर्मज्ञ व्यक्ति ही सम्यक् अनुभव करते हैं। हेविज्ञो ! संसारमें असद्भाव

अविद्यायाः सदा विज्ञाः ! प्रभावं भूरिशो भवे ।
किन्तु मद्‌युक्तसद्भावात्मकं कर्म्म निरन्तरम् ॥११९॥
अलं वर्द्धयते विद्याप्रभावं जगतीतले ।
भावप्रभाव एतावान्महानस्ति पितृव्रजाः ॥ १२० ॥
बलाद्‌यस्य जड़ो याति चैतन्यं महदद्‌भुतम् ।
जड़ायामपिमूर्त्तौ वै येनैवाविर्भवाम्यहम् ॥ १२१ ॥
असत्यमपि सत्यं स्यात्प्रोक्तं जीवहिताय वै ।
अधर्म्मो जायते धर्म्मः पशुहिंसा यथाध्वरे ॥१२२॥
यात्येवं भावसम्बन्धाच्चैतन्यं जड़तामिह ।
सत्यं मिथ्या भवेद्धर्म्मो जायतेऽधर्म्मरूपभाक् ॥१२३॥
भावशुद्धिसमायुक्तमसत्कर्म्माण्यतो ध्रुवम् ।
आपद्धर्म्मे भजत्येव सद्धर्म्मत्वं न संशयः ॥१२४॥
विधत्तोऽदश्च जीवानां मङ्गलं परमं सदा ।
गतिः सूक्ष्मास्ति धर्म्मस्य भवन्तोऽतः पितृव्रजाः! ॥१२५

मूलक आसक्ति सदा अविद्याके प्रभावको अत्यन्त ही बढ़ाती है किन्तु मुझसे युक्त सद्‌भावात्मक कर्म निरन्तर जगत्‌में विद्याके प्रभावको ही वृद्धि करते हैं। हे पितृगण ! भावका प्रभाव इतना महान् है कि उसके बलसे जड़ महाद्‌भुत चैतन्यको प्राप्त होता है जिस कारणसे ही मैं जड़ मूर्तिमें भी निश्चय प्रकट होता हूं ॥ ११८-१२१ ॥ मिथ्या भी सत्य हो जाता है जो कि जीवोंके हितके लिये ही कहा गया हो । अधर्म धर्म हो जाता है, यथा-यज्ञ में पशुहिंसा ॥ १२२ ॥ इस प्रकार इस संसारमें भावके सम्बन्धसे चैतन्य जड़ सत्य असत्य और धर्म अधर्म हो जाता है ॥ १२३ ॥ इसी कारण भावशुद्धियुक्त असत् कर्म भी आपद्धर्म में निःसन्देह सद्धर्मरूपमें परिणत होकर ही जीवोंके लिये सदा परम मङ्गल-विधायक होता है । धर्म्मकी गति सूक्ष्म है अतः हे पितृगण ! आप सब

कुर्य्युश्चेत् कर्म्म मच्चिता भावशुद्धिपुरस्सरम् ।
अधिकुर्य्यु स्तदावश्यं पुर्णं धर्म्मं सनातनम् । ॥१२६॥
मन्त्राणां प्रणवःसेतुर्यथा मन्त्रच्युतिं किल ।
अपनोद्याशु सम्पूर्णां दत्ते मन्त्राधिकारिताम् ॥ १२७ ॥
तथैव भावसंशुद्धया शक्तिर्धर्म्मस्य धारिका ।
सन्तिष्ठते सदाऽक्षुण्णा नितरामूर्द्ध्वगामिनी ॥१२८॥
कदाचिदत एवाऽऽपद्धर्म्मस्य निर्णये
अधर्म्मेणापि धर्म्मस्य स्वरूपे परिणम्यते ॥१२९॥
यदा कश्चिद्विशेषस्तु धर्म्मः शक्तिमवाप्नुयात्
अधिकां भावसंशुद्धया कोटिं साधारणस्य सः ॥१३०॥
असाधरणधर्म्मस्याधिकारं लभते वहन् ।
एतावन्ननु दुर्ज्ञेयं रहस्यं धर्म्मगोचरम् ॥१३१॥
आस्ते पितृव्रजाः ! कोऽपि यन्न शक्नोति वेदितुम् ।
धर्म्माधर्म्मौ सुनिर्णेतुं नैव कश्चिद्यथार्थतः ॥१३२॥

भावशुद्धिपूर्वक मद्गतचित्त होकर यदि कर्म करोगे तो अवश्य सनातनधर्म्मके पूर्णाधिकारको प्राप्त कर सकोगे ॥ १२४-१२६ ॥ जिस प्रकार प्रणव मन्त्रोंका सेतु है, वह मन्त्रोंमें कोई त्रुटि रहनेसे उसको शीघ्र ही दूर करके मन्त्रका पूर्णाधिकार प्रदान करता है ॥ १२७ ॥ उसी प्रकार भावशुद्धिद्वारा सदा धर्म्मकी उर्द्ध्वगामिनी धारिकाशक्ति सम्पूर्णरूपसे अक्षुण्ण बनी रहती है ॥ १२८ ॥ इसी कारण आपद्धर्म्मके निर्णय करनेमें कभी २ अधर्म्म भी धर्म्मरूपमें ही परिणत हो जाता है ॥ १२९ ॥ और जब कोई विशेष धर्म्म भावशुद्धिके द्वारा अधिक शक्ति लाभ करे तब वह साधारण धर्म्मकी कोटिमें पहुंचकर असाधारण धर्म्मके अधिकारको प्राप्त करता है । हे पितृगण ! धर्म्मका रहस्य इतना दुर्ज्ञेय है कि कोई भी जिसको नहीं जान सकता । मेरे ज्ञानीभक्त और मेरे पूर्णावतारोंके अतिरिक्त कोई भी यथार्थ रूपसे

समीष्टे वा गतिं वेत्तुं धर्म्मस्यास्य कथञ्चन ।
ऋते पुण्यात्रतारं हि भक्तान वा ज्ञानिनो विना ॥१३३॥
याथार्थ्यान्निर्णयं कर्तुं धर्म्माधर्म्मव्यवस्थितेः ।
अतो वदाः प्रमाणानि तन्मता आगमास्तथा ॥१३४॥
सर्व्वे विशेषधर्म्माः स्यु प्रायशोऽभ्युदयप्रदाः ।
तथा साधारणो धर्म्मो निःश्रेयकरोऽखिलः ॥१३५॥
किन्तु साधारणो धर्म्मो दुर्ज्ञेयोऽज्ञानिभिः सदा ।
आस्तो विशेषधर्म्मस्तु सर्वथा भीतिवर्ज्जितः ॥ १३६ ॥
धर्म्मात्मा वै यदा धर्म्मं विशेषं पालयन् मुहुः ।
नूनमस्य पराकाष्ठां धर्म्मस्य लभते हिताम् ॥१३७॥
साधारणस्य धर्म्मस्य निखिलव्यापकं तदा ।
स्वरूपं ज्ञातुमीष्टेऽसौ सर्वजीवहितप्रदम् ॥१३८॥
तदन्तिके तदा सर्व्वे धर्म्ममार्गा भजन्त्यहो ।
वात्सल्यं हि यथा पुत्रा पौत्राश्च सन्निधौ पितुः ॥१३९॥

धर्म्माधर्म्म निर्णय नहीं कर सकता और न किसी प्रकार धर्मका गतिवेत्ता हो सकता है ॥ १३०-१३३ ॥ इसी कारण धर्म्माधर्म्मकी व्यवस्थाके यथार्थ निर्णय करनेमें वेद और वेदसम्मत शास्त्र ही प्रमाण हैं ॥ १३४ ॥ साधारणतः सब विशेषधर्म्म अभ्युदयप्रद और सब साधारण धर्म्म निःश्रेयसप्रद हैं ॥ १३५ ॥ परन्तु अज्ञानियों के निकट साधारण धर्म्म सदा दुर्ज्ञेय है और विशेष धर्म्म सर्वथा भयरहित है ॥ १३६ ॥ विशेष धर्म्मके पालन करते-करते जब धर्म्मात्मा विशेष धर्म्मकी हितकारी पराकाष्ठाको अवश्य प्राप्त कर लेता है तब वह साधारण धर्म्मके सर्व्वव्यापक और सर्व्वजीव-हितकारी स्वरूपको समझनेमें समर्थ होता है ॥ १३७-१३८ ॥ अहो! तब उसके निकट सब धर्म्ममार्ग ऐसेही वात्सल्यको प्राप्त होते हैं जैसे पिताके सम्मुख उसके पुत्र पौत्र वात्सल्यको प्राप्त हुआ करते हैं।

ममैव ज्ञानिनो भक्ता धर्म्मं सासारणं किल !
अधिकर्त्तुं क्षमन्ते वै पूर्णतो नात्र संशयः ॥१४०॥
मद्भक्ता ज्ञानितो विज्ञाः धर्म्मज्ञानाब्धिपारगाः ।
सार्द्धं केनापि धर्म्मेण विरोधं नैव कुर्वते ॥ १४१ ॥
साधारणे विशेषे च धर्म्मेऽसाधारणे तथा ।
सम्प्रदायेषु सर्वेषु भक्ता ज्ञानिनं एव मे ॥१४२॥
ममैवेच्छा स्वरूपिण्या धर्म्मशक्तेः स्वधाभुजः !
सर्वव्यापकमद्वैतं रूपं नन्वीक्षितुं क्षमाः ॥१४३॥
संसारेऽत्राभिधीयन्ते श्रीजगद्गुरवो ध्रुवम् ।
लोकाभ्युदयसिद्ध्यर्थं कल्याणार्थञ्च वः सदा ॥१४४॥
अतिगुह्यं रहस्यं वो वेदतात्पर्य्यबोधकम् ।
भवद्भक्त्या प्रसन्नेन पितरौ वर्णितं मया ॥१४५॥
संवर्द्धन्तां चिरं विज्ञाः ! भवत्कल्याणसम्पदः ।
धर्म्मवृद्धिश्च संसारे जायतां नितरां मुदे ॥१४६॥

॥ १३९ ॥ मेरे ज्ञानी भक्त ही साधारण धर्म्मके पूर्णअधिकारी निश्चय ही हो सकते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ १४० ॥ हे विज्ञो ! मेरे धर्म्मज्ञान-रूप समुद्रके पारगामी ज्ञानी भक्त किसी भी धर्म्मके साथ विरोध नहीं करते हैं ॥ १४१ ॥ हे पितरो ! मेरे ज्ञानी भक्त ही विशेष धर्म्म, साधारण धर्म्म और असाधारण धर्म्म तथा सब धर्म्मसंप्रदायोंमें मेरी ही इच्छारूपिणी धर्म्मशक्तिका एक सर्व्वव्यापक अद्वैतरूप दर्शन करने में समर्थ होकर इस संसारमें निश्चय ही जगद्गुरु नामसे अभि-हित होते हैं। हे पितृगण ! मैंने समस्त संसारके अभ्युदय और आप लोगों के सदा कल्याणार्थ वेदके तात्पर्योका बोधक अतिगुह्य रहस्य आपकी भक्तिसे प्रसन्न होकर आपसे वर्णन किया है ॥१४२-४५॥ हे विज्ञो ! आपलोगोंकी कल्याणसम्पत्ति चिरकाल बढ़े और संसार में प्रसन्नता के लिये निरन्तर धर्म्मकी वृद्धि हो ॥१४६॥ आप

एतद्धर्म्मरहस्यं हि पुष्णीत हृदये सदा ।
एवं कृते मनुष्याणामार्य्यसृष्टावपि द्रुतम् ॥ १४७ ॥
रहस्यं पुनरेतद्धै प्रकाशं स्वयमेष्यति ।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मेऽस्मिन् प्रायो लुप्ते भवत्यपि ॥ १४८ ॥
बीजञ्चेद्रक्षितं तर्हि सम्यक् कालप्रभावतः ।
अनार्य्यत्वेन युक्तायां सत्यां सृष्टावपि ध्रुवम् ॥ १४९ ॥
कालवेगप्रभावेण मानवानां स्वधाभुजः ! ।
आर्य्यवीर्य्यसुरक्षातः प्रजातन्तुः सुरक्षितः ॥ १५० ॥
वर्णाश्रमेण धर्म्मेण युक्तः शुद्धो भविष्यति ।
यथाकालं यथादेशं यथापात्रं कदाचन ॥ १५१ ॥
सर्वाऽविरुद्धं सर्वेषां मङ्गलायतनं हितम् ।
सार्वभौमं पुनर्लोके धर्म्मज्ञानं प्रकाशयेत् ॥ १५२ ॥
भावशुद्धे रहस्यं यत् पुरा युष्मभ्यमुक्तवान् ।
कालप्रभावतो जाते भय आर्य्यप्रजास्वहो ! ॥ १५३ ॥

इसी धर्म्मरहस्यको सदा हृदयमें पोषण करो, ऐसा करने पर मनुष्योंकी आर्य्यसृष्टिमें भी यह रहस्य शीघ्र पुनः स्वयं ही प्रकाशित होगा। वर्णाश्रमधर्म्म के लुप्तप्राय हो जाने पर भी हे पितृगण ! यदि उसका बीज कालप्रभावसे सुरक्षित होगा तो मनुष्यसृष्टिके कालवेगके प्रभावसे अनार्य्यभावधारण करने पर भी आर्य्यवीर्य्यकी सुरक्षा रहनेसे वर्णाश्रमधर्म्मयुक्त शुद्ध प्रजातन्तुकी अवश्य सुरक्षा होगी और यथाकाल यथादेश और यथापात्र किसी समय सर्वाविरुद्ध सर्वमङ्गलालय हितकर और सार्वभौम धर्मज्ञानका पुनः जगत्में प्रकाश होगा ।।१४७ १५२।। मैंने जो भावशुद्धि का रहस्य पहले तुमसे कहा है, अहो ! कालप्रभावसे आर्य्यप्रजामें वर्णाश्रमधर्म्मकी हानिका

वर्णाश्रमाख्यधर्म्मस्य क्षतेरतिमहत्यपि ।
आपद्धर्म्मस्य साहाय्याद्भावशुद्ध्यैव सत्तमाः ॥१५४॥
सर्वथा निश्चितं सम्यक् तस्य रक्षा भविष्यति ।
अतः पितृगणाः ! यूयं निर्भयास्तत्पराः खलु ॥१५५॥
पालयध्वं निजं नूनं कर्त्तव्यं हितसाधकम् ।
भवतां मंगलं येन लोकस्यपि भविष्यति ॥ १५६ ॥

इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योग-
शास्त्रे सदाशिवपितृसंवादे धर्म्मनिरूपणं
नाम प्रथमोऽध्यायः ।

अत्यन्त महान् भय उत्पन्न होने पर भी हे महानुभावो। भावशुद्धि द्वारा ही आपद्धर्म्मकी सहायतासे उसकी अवश्य सब प्रकारसे सुरक्षा होगी। इसकारण हे पितृगण ! तुम सब भयरहित और तत्पर होकर ही अपने हितकर कर्त्तव्यका अवश्य पालन करो जिससे तुम्हारा और सब संसारका भी मंगल होगा ॥ १५३-१५६ ॥

इसप्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रह्मविद्यासम्बन्धी योग--
शास्त्रमें सदाशिव पितृसम्वादात्मक धर्म्मनिरूकणनामक
प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।

—:०:—

पिण्डसृष्टिनिरूपणम्।

पितर ऊचुः ॥ १ ॥

पूर्णस्वरूपं धर्म्मस्य जगत्यां जगदीश्वर ! ।
सार्वभौम प्रचार्य्येत लोककल्याणदं कथम् ॥ २ ॥
भो सर्वेश्वर ! भक्तानां जीवानां हे त्रितापहृत् ! ।
धर्म्मस्यैवंविधोदारमूर्त्तेश्च दर्शनं कथम् ॥ ३ ॥
शक्नुयाज्जीवपिण्डेषु भवितुं वा महेश्वर ! ।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मस्य सम्भाव्येताऽथवा कथम् ॥ ४ ॥
यथावत्सम्प्रचारोऽस्मिँल्लोके शोक विमोचन ! ।
तस्मिन् वर्णाश्रमे धर्म्मे वाधनोपस्थितौ ननु ॥ ५ ॥
बीजंवा तस्य धर्म्मस्य रक्षितं स्यात् कथं विभो ।
उपस्थिते सुकालेऽस्य येन वृद्धिर्भवेत्पुनः ॥ ६ ॥
जीवसृष्टिरहस्ये वा मानवानाञ्च किंविधम् ।
जन्ममृत्युगतं नाथ ! वैलक्षण्यं सुगोपितम् ॥ ७ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे जगदीश्वर ! धर्म्मका लोककल्याणकारी सार्व्वभौम पूर्ण स्वरूप जगत्में कैसे प्रचारित हो सकता है ॥२॥ और हे भक्तजीवत्रितापहारी ! हे सर्व्वेश्वर ! हे महेश्वर ! धर्म्मकी ऐसी उदार मूर्तिका दर्शन कैसे जीवपिण्डमें हो सकता है। अथवा हे शोकविमोचन ! वर्णाश्रमधर्म्मका यथार्थ प्रचार इस लोकमें कैसे सम्भव है और यदि उस वर्णाश्रमधर्म्ममें बाधा पहुंचने लगे तो हे विभो। उस धर्म्मकी बीजरक्षा कैसे हो सकती है जिससे सुसमय उपस्थित होने पर पुनः उसकी वृद्धि हो सके ॥ ३-६ ॥ और हे नाथ ! जीवसृष्टि-रहस्यमें मनुष्योंकी जन्ममृत्युकी कैसी विचित्रता रक्खी गई है ॥७॥

सहायकाः कथं स्याम मानवानां क्रमोन्नतौ ।
सामञ्जस्यं भवत्सृष्टेर्येन रक्षितुमीश्महे ॥ ८ ॥
भावत्रयगतं ह्येतद्रहस्यं सर्व्वमुत्तमम् ।
उपदिश्य प्रभो ! सम्यगस्मानद्य कृतार्थय ॥९॥

सदाशिव उवाच ॥ १० ॥

पितरो वः शुभाकाङ्क्षां जगत्कल्याणकारिणीम् ।
आलोक्यातिप्रसन्नोऽहं भवन्तो मे प्रिया यतः ॥ ११ ॥
सानन्दं पूरयिष्येऽतोऽभिलाषं वः शुभावहम् ।
नन्वाधिभौतिकं ज्ञानं कल्याः ! स्थूलजगद्गतम् ॥ १२॥
तथाऽऽधिदैविकं ज्ञानं सूक्ष्मदैवजगद्गतम् ।
अध्यात्मराज्यसम्बद्धमात्मज्ञानं तथैव च ॥ १३ ॥
प्रोक्तमेवं विधं ज्ञानं त्रिविधं न प्रकाशते ।
मानवानां सामाजेऽलं युगपद्यावदेव ह ॥ १४ ॥

मनुष्योंकी क्रमोन्नतिमें हम कैसे सहायक हो सकते हैं जिससे आपकी सृष्टिका सामञ्जस्य हम रक्षा करनेमें समर्थ हों ॥८॥ हे प्रभो ! इस समय त्रिविध भागवत उक्त सर्व्वोत्तम रहस्योंका हमें भलीभांति उपदेश देकर कृतार्थ कीजिये ॥ ९ ॥

सदाशिव बोले ॥ १० ॥

हे पितृगण ! जगत्कल्याणकारिणी आपकी शुभ वासनाको देखकर मैं अति प्रसन्न हुआ हूँ क्योंकि आपलोग मेरे प्रिय हैं ॥ ११ ॥ इसलिये मैं आनन्दपूर्वक आपकी शुभवासनाको पूर्ण करूंगा । हे पितृगण ! जब तक स्थूल जगत्ससम्बन्धी आधिभौतिक ज्ञान सूक्ष्म दैवीजगत्सम्बन्धीय आधिदैविक ज्ञान और उसी प्रकार अध्यात्म राज्यसम्बन्धीय आत्मज्ञानं, इस प्रकारके उक्त त्रिविधज्ञान का विकाश एकही कालमें सम्यक् रूपसे मनुष्य समाज में नहीं होता

ज्ञानज्योतिर्न जागर्त्ति ताभृत्पूर्णञ्च सात्त्विकम् ।
मर्त्त्यान्तःकरणे नूनमिति मे दृढ़निश्चयः ॥ १५ ॥
यावन्निखिलभूतेष्वविभक्तञ्चैक्यदर्शकम् ।
सदा पूर्णं प्रकाशेताधिकं ज्ञानं न सात्त्विकम् ॥ १६ ॥
मानवानां समाजेषु सार्वभौमं विराडलम् ।
तावन्नैवाववुध्येत स्वरूपं धर्म्मगोचरम् ॥ १७ ॥
कायविद्या चिकित्सा च शल्यविद्या रसायनम् ।
उद्भिज्स्वेदाण्डजानां हि तत्त्वविद्या तथैव च ॥ १८ ॥
पाशवी तत्त्वविद्या च तत्त्वविद्या च मानवी ।
क्षित्यप्तेजो मरुद्व्योमतत्त्वविद्या तथैव च ॥ १९ ॥
नाना पदार्थविद्या मे सन्ति नूनं सहायिकाः ।
आधिभौतीशक्तिविद्या ज्ञानेखल्वाधिभौतिके ॥ २० ॥
आविष्कारस्तथा ज्ञानलाभो वै वर्त्तते ध्रुवम् ।
आसां पदार्थविद्यानां सुलभो नात्र संशयः ॥ २१ ॥

है तब तक पूर्ण सात्त्विक ज्ञानकी ज्योति मनुष्य अन्तःकरणमें प्रतिभासित नहीं ही होती है यह मेरा दृढ़ निश्चय है ॥१२-१५॥ जब तक सर्व्वभूतोंमें अविभक्त और सब भूतोंमें ऐक्यभावको दिखाने वाला, सब दशामें पूर्ण रहनेवाला सात्त्विक ज्ञान मनुष्यसमाजमें अधिक रूपसे प्रकाशित नहीं होता है तब तक धर्म्मके सार्व्वभौम विराट् स्वरूपका सम्यक् अनुभव मनुष्यसमाज नहीं ही कर सकता है ॥ १६-१७ ॥ मेरे अधिभौतिक ज्ञानमें शारीरिकविद्या, चिकित्सा विद्या, शल्यविद्या, रसायनविद्या, उद्भिज्जतत्त्वविद्या, स्वेदजतत्त्वविद्या, अण्डजतत्त्वविद्या, पशुतत्त्वविद्या, मनुष्यतत्त्वविद्या, भूतत्त्वविद्या, आकाशतत्त्वविद्या, जलतत्त्वविद्या, वायुतत्त्वविद्या, अग्नितत्त्वविद्या, आधिभौतिकशक्तिविद्या, ये अनेक पदार्थविद्याएँ अवश्य सहायक हैं ॥ १८-२० ॥ इन पदार्थविद्याओंका आविष्कार और ज्ञानलाभ करना अवश्य ही सहजसाध्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ २१ ॥ क्योंकि

आसाद्यन्ते यतो नूनं पुरुषार्थैस्तु केवलैः ।
लौकिकैरेव लोकेषु विद्या उक्ता इमा द्रुतम् ॥ २२ ॥

दुर्ज्ञेयैः पितरः ! किन्तु सूक्ष्मराज्यविभूतिभिः ।
पूर्णाऽधिदैवविद्याऽतिगुह्या दुर्ज्ञेयवैभवा ॥ २३ ॥

यस्य किञ्चद्रहस्यं वः संक्षेपाद्वर्णयाम्यहम् ।
सावधानैभर्भवद्भिश्च श्रूयतां पितरोऽधुना ॥ २४ ॥
असावेकाऽद्वितीयाऽपि श्यामा मे प्रकृतिः सती ।
स्थूलात्सूक्ष्मात्तुरीयाच्च कारणाद्रूपतस्तथा ॥ २५ ॥
चतुर्धा संविभक्ताऽलं राजते विश्वमोहिनी ।
सन्देहो नात्र कर्त्तव्यो विस्मयो वा कदाचन ॥ २६ ॥

स्थूलायाः प्रकृतेः सप्ताधिकाराः सन्ति सर्वथा ।
तेषामेवाधिकाराणां गूढः शक्तिमयो महान् ॥ २७ ॥

रहस्यसङ्घः पितरो वर्त्तते सम्प्रकाशकः ।
आधिभौतिकबोधातिगुह्यविज्ञानविस्तृतेः ॥ २८ ॥

उक्त ये सब विद्याएँ केवल लौकिक पुरुषार्थोंसे ही संसारमें अवश्य ही शीघ्र प्राप्त होती हैं ॥ २२ ॥ परन्तु हे पितृगण ! दुर्ज्ञेय सूक्ष्म राज्यकी विभूतियोंसे पूर्ण अधिदैवविद्या अतिगुह्य और दुर्ज्ञेय-वैभवा है ॥ २३ ॥ जिसका कुछ रहस्य संक्षेपसे मैं आपसे कहता हूँ हे पितृगण ! इस समय आपलोग सावधान होकर सुनो ॥ २४ ॥ यह विश्वमोहिनी मेरी प्रकृति श्यामा एक और अद्वितीय होकर भी स्थूल सूक्ष्भ कारण और तुरीय रूपसे चतुर्धा विभक्त होकर विराज-मान है इसमें सन्देह या विस्मय कभी नहीं करना चाहिये ॥ २५-२६ ॥ स्थूल प्रकृतिके सर्वथा सप्त अधिकार हैं उन्हीं सप्त अधिकारोंके शक्तिमय महान् गहन रहस्यसमूह हे पितृगण ! आधिभौतिक ज्ञानके अतिगुह्य विज्ञानविस्तारके प्रकाशक हैं

सप्तधा शक्तिविज्ञानं स्थूलायाः प्रकृतेरपि।
जगत्यां प्रायशो नैव सम्भवेत्सम्प्रकाशितम् ॥ २९ ॥
सन्त्येवातीव गुह्यानि रहस्यान्यपराणि तु।
नैवात्र संशयः कोऽपि कर्त्तव्यः पितरो बुधाः! ॥३०॥
सूक्ष्मकारणयोः शक्त्योर्विज्ञानौघः समुच्यते।
आधिदैविकसम्बन्धिज्ञानं नैवात्र संशयः ॥ ३१ ॥
शक्तेस्तत्त्वं तुरीयाया वाङ्मनोबुद्ध्यगोचरम्।
यदास्ते तद्विजानीत ज्ञानमध्यात्मसंज्ञकम् ॥ ३२ ॥
अमीषां ज्ञानपुञ्जानां त्रिविधानामसंशयम्।
बोधो रहस्यवर्गस्य सुगमो नैव वर्त्तते ॥ ३३ ॥
ममैव ज्ञानिनो भक्ताः शक्नुवन्ति सुखं द्रुतम्।
रहस्यं ज्ञातुमेतेषां पितरो नात्र संशयः ॥ ३४ ॥
श्यामा त्रैगुण्यमय्यास्ते प्रकृतिर्मे स्वभावतः।
धर्म्मोऽस्ति त्रिगुणानाञ्च चाञ्चल्यं श्रुतिसम्मतः ॥३५॥

॥ २७ २८ ॥ स्थूल प्रकृतिके सप्तविध शक्तिविज्ञानका भी जगत्में प्रकाशित होना प्रायः सम्भव नहीं ही होता है ॥ २९ ॥ अन्यान्य रहस्य तो अतिगुह्य ही हैं हे विज्ञ पितृगण! इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ही करना ॥३०॥ सूक्ष्म शक्ति और कारण शक्तिके विज्ञानसमूह आधिदैविक ज्ञान कहाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥३१॥ तुरीय शक्तिका जो मन वचन और बुद्धिसे अतीत तत्त्व है उसको अध्यात्म ज्ञान जानो ॥ ३२ ॥ इन त्रिविध ज्ञानसमूहके रहस्योंका समझना निः सन्देह ही सहज नहीं है ॥ ३३ ॥ हे पितृगण! मेरे ज्ञानीभक्त ही इनके रहस्यको अनायास शीघ्र समझनेमें समर्थ होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ३४ ॥ मेरी प्रकृति श्यामा स्वभावसे त्रिगुणमयी है और त्रिगुणका धर्म्म अस्थिरता है यह श्रुतिसम्मत है ॥ ३५ ॥

परिणामिन्यतो नित्यं प्रकृतिर्मेऽस्त्यसंशयम् ।
तदा सा प्रोच्यते विद्या मां यदैवावलोकते ॥ ३६ ॥

यदा वहिर्मुखीनाऽसौ प्रसूते जगदद्भुतम् ।
तदाऽविद्याभिधानेन नूनमेषाऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

प्रेमसात्प्रकृतेः स्वस्याः स्यामहं विश्ववीजदः ।
त्रिविधानां हि देवानां भवेयं जनकोऽपि च ॥ ३८ ॥

त एव त्रिविधा देवा विश्वस्य त्रिविधा गतीः ।
पालयन्ते यथा सृष्टीः सत्यमेतन्न संशयः ॥ ३९ ॥

भिन्ना त्रिगुणवैचित्र्याच्छक्तिद्वैविध्य आत्मना ।
दृष्टिगोचरतामेति श्यामाऽत्र जगतीतले ॥ ४० ॥

शक्ती त एव कथ्येते आकर्षणविकर्षणे ।
रागद्वेषौ च पितरो नाऽत्र कश्चन संशयः ॥ ४१ ॥

आद्ये स्थूलेऽपरौ सूक्ष्मौ विद्येते पितरो ध्रुवम् ।
एतयोर्गुणसम्बन्धः प्रोच्यते साम्प्रतं मया ॥ ४२ ॥

इस कारण मेरी प्रकृति निःसन्देह सदा परिणामिनी रहती है। जब ही वह मेरी तरफ देखती है तब वह विद्या कहती है ॥ ३६ ॥ जब वह वहिर्मुखींन होकर अद्भुत जगत् प्रसव करती है तब ही वह अविद्या कहाती है ॥ ३७ ॥ मैं अपनी प्रकृतिके प्रेमके वशीभूत होकर जगत्का बीजदाता बनजाता हूँ और मैं ही त्रिविध श्रेणीके देवताओंका जनक भी बनजाता हूँ ॥ ३८ ॥ वेही त्रिविध देवतागण जगत्की त्रिविधसृष्टि और गतिका संरक्षण करते हैं यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ३९ ॥ श्यामा त्रिगुण वैचित्र्यसे दो प्रकारकी शक्तिमें विभक्त होकर इस जगत्में दिखाई देती है ॥ ४० ॥ उन्हीं शक्तियोंको आकर्षण विकर्षण और राग द्वेष कहते हैं हे पितृगण! इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ४१ ॥ हे पितृगण! प्रथम स्थूल और दूसरी सूक्ष्म ही है अब मैं इन दोनों शक्तियों का गुणसम्वन्ध कहता

अस्ति रागो रजोमूलस्तथाऽऽकर्षणमेव च।
विकर्षणं तथाद्वेषस्तमोमूलश्च विद्यते ॥ ४३ ॥
समन्वये द्वयोः सत्त्वगुणो नूनं विकाशते।
अतः समन्वयादेव तयोर्विश्वस्य धारिका ॥ ४४ ॥
विश्वं रक्षति मच्छक्तिः सात्त्विकी धर्म्मरूपिणी।
नित्या सा वर्त्तते नित्यं विश्वकल्याणकारिणी ॥४५॥
आरभ्य पितरौऽनेकग्रहोपग्रहतोऽखिलम्।
अण्वन्तं स्थितिमादत्ते तस्मादेव समन्वयात् ॥४६॥
तथा समन्वयस्यैव दशायां द्वेषरागयोः।
जीवान्तःकरणे सत्त्वगुणस्यैव प्रकाशतः ॥ ४७ ॥
ज्ञानं विकाशते सम्यग् धर्म्मभाव उदेति च।
पुण्यः पुण्यप्रवाहो हि वहते नात्र संशयः ॥ ४८ ॥
द्वे एव भवतः शक्ती आकर्षणविकर्षणे।
नारीधारासु जीवानां नृधारास्वपि सर्व्वतः ॥ ४९ ॥

हूँ ।। ४२ ॥ आकर्षण और राग रजोमूलक और विकर्षण और द्वेष तमोमूलक हैं ॥ ४३ ॥ दोनोंके समन्वयमें ही सत्त्वगुणका विकाश होता है इस कारण आकर्षण विकर्षणके समन्वयसे ही जगत्की धारक धर्म्मरूपिणी मेरी सात्त्विक शक्ति जगत्की रक्षा करती है। वह नित्या और सर्वदा विश्वका कल्याण करनेवाली है ।.४४=४५॥ पितरो ! उसी समन्वयसे अनेक ग्रह उपग्रहसे लेकर परमाणु पर्य्यन्त सब स्थितिभावको धारण करते हैं ॥ ४६ । उसी प्रकार रागद्वेषके समन्वयकी दशामें ही सत्त्वगुणका विकाश जीवके अन्तःकरणमें होनेसे ज्ञनका विकाश और धर्म्मभावका सम्यक् उदय हुआ करता है, पवित्र पुण्य प्रवाह ही बहता रहता है इसमें सन्देह नहीं ॥ ४७=४८ ॥ यही दो आकर्षण और विकर्षण शक्तियां जीवोंकी स्त्री

आकर्षणस्वरूपं हि शरीरं योषितामिह ।
तथा विकर्षणं नृणां शरीरं स्यात्स्वरूपतः ॥ ५० ॥
ब्रम्हानन्दनुभूतेः स्याल्लोभात् स्पर्शेन्द्रियेण वै ।
दम्पतीसङ्गमः साक्षात्पवित्रः सात्त्विकः शुभः ॥ ५१ ॥
सत्त्वभावमयः पुण्यो वर्त्तते सङ्गमक्षणः ।
आधिदैविकपीठस्योत्पादको नात्र संशयः ॥ ५२ ॥
विष्णुस्वरूपमादाय ब्रम्हाऽडस्य स्थितिक्षणे ।
ब्रह्माण्डेऽस्मिन यथाऽऽकृष्टो विष्णुपीठस्वरूपिणि ॥५३॥
सन्तिष्ठे पितरो नूनं दम्पतीसङ्गमे तथा ।
आकृष्यन्ते त्रिधा देवाः पीठस्योत्पादके स्वतः ॥ ५४ ॥
यथाकालं यथादेशं यथापात्रं तदाऽनघाः ।
भवन्तः पितरस्तत्र रजोवीर्य्याश्रयेण हि ॥५५॥
आकृष्यन्ते वपुर्दातुं जीवाय स्थूलमद्भुतम् ।
अन्ये देवगणा नेतुं शरीरैरातिवाहिकैः ॥ ५६ ॥

धारा और पुरुषधारामें सर्वत्र वर्त्तमान हैं ॥ ४९ ॥ इस संसारमें स्त्री शरीर आकर्षण रूपी और पुरुष शरीर विकर्षण रूपी ही है ॥ ५० ॥ स्पर्श-इन्द्रियद्वारा ब्रह्मानन्द अनुभवके लोभसे ही साक्षात् पवित्र सात्त्विक और शुभ स्त्रीपुरुषका सङ्गम होता है ॥ ५१ ॥ सङ्गमका काल अतिपवित्र सत्त्वभावमय और अधिदैवपीठ=उत्पादक है इसमें सन्देह नहीं ॥ ५२ ॥ जैसे हे पितृगण ! ब्रह्माण्डकी स्थिति दशामें मैंही विष्णुरूप धारण करके विष्णुपीठरूपी इस ब्रह्माण्डमें आकृष्ट रहता हूँ उसी प्रकार दम्पतीकी पीठ–उत्पन्नकारी सङ्गम दशामें त्रिविध देवतागण स्वतः आकृष्ट हुआ करते हैं ॥ ५३ ५४ ॥ हे अनघ पितृगण ! उस समय आपलोग रजवीर्य्यकी सहायतासे ही यथादेशकालपात्र अद्भुत स्थूल शरीर जीवको प्रदान करनेके अर्थ उस पीठमें आकृष्ट होते हो । अन्यान्य देवतागण आतिवाहिक देह-

युक्ताञ्जीवगणाँस्तत्र सूक्ष्मदेहावलम्बिनः ।
पूर्वेभ्यो भोगलोकेभ्य आकृष्यन्ते न संशय ॥ ५७ ॥
रजःशक्त्या ततस्तत्र तमःशक्तिः परास्यते ।
तेन पीठे विनष्टे वै रजोजातबलाश्रयात् ॥ ५८ ॥
पतितस्यैव वीर्य्यस्य सहयोगेन सर्वथा ।
नारीदेहे भवेन्नूनं गर्भाधानं न संशयः ॥ ५९ ॥
यथायोग्यं तदा यूयं जीवानां सूक्ष्मदेहिनाम् ।
सन्निवासोपयुक्तानि स्थूलदेहगृहाण्यहो ॥ ६० ॥
संयच्छथ नयन्ते च जीवांस्तत्रैव निर्ज्जराः ।
पराजितं तमोनैव स्यत्तत्र रजसा यदि ॥ ६१ ॥
रजस्तमोभ्यां पितरो भावशुद्धिपुरस्सरम् ।
अग्रेसरद्भ्यां सततं सत्त्वं ज्ञानमयं प्रति ॥ ६२ ॥
नृनारीभेदरूपाच्च द्वन्द्वधर्म्मप्रभावतः ।
लब्ध्वा बर्हिगताभ्यां हि पराभक्तिं ममोत्तमाम् ॥ ६३ ॥

युक्त सूक्ष्मदेहधारी जीवोंको पूर्व्वभोग लोकोंसे वहां पहुंचा देनेके लिये निःसन्देह आकृष्ट होते हैं ।। २५-५७।। वहां रजशक्ति तमशक्ति को परास्त करलेती है उससे पीठका नाश होजाने पर ही रजोगणके बलसे पतित वीर्य्यके सर्वथा सहयोगसे ही नारीदेहमें ही निःसन्देह गर्भाधान हो जाता है ।। ५८-५९ ।। उस समय आपलोग यथायोग्य सूक्ष्म शरीरधारी जीवोंके रहनेके उपयोगी यथायोग्य गृहरूपी स्थूल शरीर प्रदान करते हो और देवतागण जीवोंको वहां ही पहुंचादेते हैं । यदि वहां तमको रज परास्त नहीं ही कर सके और हे पितरो ! रज और तम भावशुद्धिपूर्वक ज्ञानमय सत्त्व की और निरन्तर अग्रसर हों और स्त्रीपुरुषभेदरूपी द्वन्द्व धर्म्म के प्रभाव से बचकर मेरी उत्तम पराभक्ति प्राप्त करके यदि सत्त्व में विलीन हो जायँ तो

यदि सत्त्वे विलीयेत तर्ह्याकृष्टा महर्षयः ।
रहितं सृष्टिधर्म्मेण कैवल्यं शाश्वतं पदम् ॥ ६४ ॥
अनेनैवाध्वना गम्यमिति संसूचयन्त्यलम् ।
नैवात्र संशयः कोऽपि विद्यते पितृपुङ्गवाः ॥ ६५ ॥
अधिदैवरहस्येन पूर्णस्यास्य पवित्रता ।
पीठविज्ञानयोगस्य यावती प्रचरिष्यति ॥ ६६ ॥
तावन्मात्रोत्तमश्रेणिमुक्तैर्जीवैर्जनिष्यते ।
जगत्यामिह सन्देहो विद्यते न स्वधाभुजः ! ॥ ६७ ॥
उत्तमस्थलदेहेषु दैवसम्पत्तिधारिणः ।
प्रवेशं कर्त्तुमर्हन्ति जीवाः सौभाग्यशालिनः ॥ ६८ ॥
तत्त्वज्ञा एव ते दैव्याः सम्पत्तेरधिकारिणः ।
नूनं धर्म्मस्य नित्यस्य सार्वभौमस्वरूपकम् ॥ ६९ ॥
वेदितुं शक्नुवन्तीह नात्र कार्य्या विचारणा ।
भूयो भेदान्नराणाञ्च नारीणां वो ब्रवीम्यहम् ॥ ७० ॥
त्रिधा ज्ञेया नरा नार्य्यो भेदात्त्रैगुण्यगोचरात् ।

ऋषिगण आकृष्ट होकर सृष्टिधर्मसे रहित शाश्वत कैवल्यपद इसी मार्गसे प्राप्य है । ऐसा भलीभांति वता देते हैं । हे पितृश्रेष्ठो । इसमें कोई संशय नहीं है ॥६०-६५॥ इस संसारमें अधिदैवरहस्यपूर्ण इस पीठविज्ञान योगकी पवित्रता जितनी प्रचारित होगी उतना ही उत्तम श्रेणी के जीवोंका जन्म हो सकेगा । हे पितरो ! इंसमें सन्देह नहीं है ॥ ६६-६७ ॥ उत्तम स्थूल शरीरोंमें दैवी सम्पत्तिधारी सौभाग्यशाली जीव पहुंच सकते हैं ॥ ६८ ॥ यहां दैवीसम्पत्तिके अधिकारी तत्त्वज्ञानी वे जीव ही सनातनधर्म्मके सार्व्वभौम स्वरूप समझनेके निःसन्देह अधिकारी हो सकते हैं इसमें कुछ विचारकी वात नहीं है, पुनः मैं नरनारियोंका भेद आपलोगोंसे कहता हूँ ॥ ६९-७० ॥ त्रिगुणसम्वन्धी भेदके अनुसार नर और नारी तीन

भवन्ति पितरस्तेषु सात्त्विका गुणमोहिताः ॥ ७१ ॥
राजसा रूपमुग्धाश्च तामसाः काममोहिताः ।
मिथुनीभूतकाले हि जायेते त्रिविधा दशा ॥ ७२ ॥
प्राकृताऽऽद्या दशैवास्ति द्वितीया विकृतात्मिका ।
तृतीयोन्मादरूपैव सत्यमेतन्न संशय ॥ ७३ ॥
प्राकृतस्यैव भावस्य नरा नार्य्यश्च सात्त्विकाः ।
राजसा विकृतस्यैव ह्युन्मादस्य तु तामसाः ॥ ७४ ॥
जायन्ते पितरः ! नूनं प्रकृत्या पक्षपातिनः ।
उन्मादरूपाऽवस्था स्यान्नूनं नरकदा तथा ॥७५॥
स्वर्गदा विकृताऽवस्था प्राकृता मुक्तिदायिनी ।
यतो नास्त्येव सम्बन्धः सृष्टेरुत्पन्नकारिणः ॥ ७६ ॥
नूनमष्टप्रकारस्य मैथुस्य तथैव च ।
विकारस्यापि तस्यां वै प्राकृतायां न संशयः ॥७७॥
अतो हि पितरो यूयं नूनं देवगणस्तथा ।

प्रकारके जानने चाहियें, हे पितरो ! उनमेंसे सात्त्विक गुणमोहित राजसिक रूपमोहित और तामसिक नरनारी काममोहित होते हैं। मिथुनीभूत कालमें तीन दशा होती है, यथा प्राकृतदशा विकृतदशा और उन्माददशा यह सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ ७१-७३ ॥ हे पितरो ! सत्त्वगुणके नरनारी प्राकृत रजोगुणके विकृत और तमोगुणके स्वभावही से उन्मादभावके पक्षपाती होते हैं। उन्माद नरकप्रद विकृत स्वर्गपद और प्राकृत दशाही मुक्तिप्रद है। क्योंकि विकार और सृष्टि उत्पन्नकारी अष्टप्रकार मैथुनका भी सम्बन्ध प्राकृतदशामें नहीं ही रहता है यह निःसन्देह ही है ॥ ७४-७७ ॥ हे पितृगण ! यही कारण है कि देवदुर्लभ चञ्चलतारहित शुद्ध सात्त्विक उत्तम अधिकार आपलोग और देवतागण किन्हीं नरनारियोंको किसी

चाञ्चल्यरहितं शुद्धं सात्त्विकं देवदुर्लभम् ॥ ७८ ॥
नारीभ्यश्च नरेभ्यश्च ह्यधिकारं कथञ्चन ।
कदाचिदेव केभ्यश्चिदीशते दातुमुत्तमम् ॥ ७९ ॥
अल्पमैथुनसन्तुष्टौ सात्त्विकौ दम्पती तथा ।
राजसौ कामुकौ किन्तु स्तो विचारसमन्वितौ ॥ ८० ॥
अविचारपरौ तौ स्तस्तामसावतिकामुकौ ।
सात्त्विकौ दम्पती नूनं स्यातां ज्ञानरतौ वरौ ॥ ८१ ॥
परस्परार्थिनौ तौ हि जायेते पितरः ! सदा ।
राजसौ भोगनिरतौ स्वार्थिनौ भवतश्च तौ ॥ ८२ ॥
तामसौ तौ विचारेण रहितौ च प्रमादिनौ ।
अनर्थकारिणौ स्यातां कामभोगपरायणौ ॥ ८३ ॥
रोचते सात्त्विकाभ्यां हि पवित्रं ज्ञान कौशलम् ।
तथैव राजसाभ्याञ्च क्रियाकौशलमद्भुतम् ॥ ८४ ॥
पितरस्तामसाभ्यान्तु भावः पाशविकः सदा ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यः सन्देहो वा कदाचन ॥ ८५ ॥

प्रकार कदाचित् ही प्रदान कर सकते हैं ॥७८-७९॥ सात्त्विक नरनारी अल्प मैथुनसे संतुष्ट राजसिकगण कामुक परन्तु विचारवान् और तामसिकगण घोर कामासक्त और अविचारी होते हैं हे पितरो ! श्रेष्ठ सात्त्विक नरनारी ही ज्ञाननिरत और सदा ही वे परस्परार्थी होते हैं राजसिकगण भोगनिरत और वे स्वार्थी होते हैं तथा तामसिकगण विचाररहित प्रमादी कामभोगपरायण और अनर्थकारी होते हैं ॥८०-८३॥ हे पितृगण ! सात्त्विक नरनारी पवित्र ज्ञानकौशल, राजसिक अद्भुत क्रियाकौशल और तामसिक पाशवभावके सदा पक्षपाती होते हैं, इसमें कभी विस्मय वा सन्देह नहीं करना चाहिये

सात्त्विकाः स्युर्नरा नार्य्यो ध्रुवं धीराः स्वभावतः ।
राजसाश्चञ्चला एवमुन्मादा इव तामसाः ॥ ८६ ॥
प्रेमिकाः सात्त्विका नित्यं राजसाः कुटिलाः स्मृताः ।
निर्ल्लज्जास्तामसा ज्ञेयाः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥८७॥
सात्त्विकाः सङ्गमेऽध्यात्मलक्ष्यकाश्च परस्परम् ।
आनन्ददा राजसास्तु कामसौख्यैकलक्ष्यकाः ॥ ८८ ॥
रता भोगे तामसास्तु स्वस्वलक्ष्याः प्रमादिनः ।
सात्त्विकानां नराणां हि नारीणामपि तादृशाम् ॥८९॥
चित्तेष्वेव प्रकाशेत ह्यात्मज्ञानं तथैव च ।
पूर्णस्वरूपं धर्म्मस्य नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ९० ॥
दम्पत्योर्वर्त्तते नूनं नराणां हि प्रधानता ।
अतो हि पितरः ! सर्वगुणानां संविकाशने ॥ ९१ ॥
कर्त्तव्यं पुरुषाणां वै मन्यतेऽभ्यधिकं बुधैः ।
प्रकृत्या च प्रवृत्त्या च तुल्या धर्म्मेण चेत्पुनः ॥ ९२ ॥

॥ ८४-८५ ॥ सात्त्विक नरनारी स्वभावसेही धीर, राजसिक चञ्चल और तामसिक उन्मादप्राय होते हैं ॥ ८६ ॥ सात्त्विक नरनारी नित्य प्रेमिक, राजसिक कुटिल और तामसिक निर्लज्ज होते हैं। यह मैं आपलोगोंसे सत्य कहता हूं ॥ ८७ ॥ सात्त्विक नरनारीको सङ्गम-दशामें अध्यात्म लक्ष्य और एक दूसरेके आनन्दमें तत्परता राज-सिकगणको एकमात्र कामजसुख लक्ष्य और भोगमें तत्परता और तामसिकगणको केवल अपना अपना लक्ष्य और प्रमादजनित सुखमें तत्परता रहती है। हे पितृगण! सात्त्विक नरनारियोंके चित्तमें ही आत्मज्ञान और धर्म्मका पूर्ण स्वरूप प्रकाशित हो सकता है। इसमें विचार नहीं करना चाहिए। ॥८९-९० स्त्रीपुरुषमें पुरुषका ही सर्व्वथा प्राधान्य है इस कारण हे पितृगण! सबगुणोंके विकाशमें विद्वानों के द्वारा पुरुषका दायित्व ही अधिक माना गया है। स्त्री और पुरुष यदि समान प्रकृति प्रवृत्ति और धर्म्मवाले होकर

प्रभवेयुर्नरा नार्य्यो धत्तु सात्त्विकलक्षणम् ।
तदर्थं सुलभा मुक्तिः का कथाभ्युदस्य वै ॥ ९३ ॥
समानधर्म्मप्रकृतिप्रवृत्ती दम्पती परम् ।
जगत्यां नैव जायेते विशिष्टां मत्कृपां विनां ॥ ९४ ॥
प्राप्नुतो जन्म चेत्सन्तौ ज्ञानिभक्तावुभावपि ।
तदैवैवंविधे योगो लोकातीतः प्रजायते ॥ ९५ ॥
यतश्चैवंविधे योगेऽनेके विघ्ना भवन्त्यलम् ।
किञ्चिदत्रापि वक्ष्येऽहं श्रूयतां पितृभिर्बुधैः ॥ ९६ ॥
नराणां पितरः ! सन्ति भेदाः षोड़शसङ्ख्यकाः ।
तथा भेदाश्च नारीणां षोड़शैव प्रकीर्त्तिताः ॥ ९७ ॥
शशो मृगो वराहोऽश्वो नृणामेताश्चतुर्विधाः ।
जातयः खलुवर्त्तन्ते नात्र कार्य्योऽतिविस्मयः ॥ ९८ ॥
प्रत्येकमेव प्रत्येकान्तर्भावेनैव जातयः ।
षोड़शधा प्रजायन्ते पुरुषाणां न संशयः ॥ ९९ ॥

सात्त्विक लक्षणों को धारण करसकें तो उनके लिये अभ्युदयकी तो बात ही क्या है मुक्ति भी अतिसुलभ है ॥ ९१-९३ ॥ परन्तु समान प्रकृति प्रवृत्ति और धर्म्मके दम्पती संसारमें मेरी विशेष कृपा विना नहीं हो सकते । ९४ ॥ यदि दोनों ही मेरे ज्ञानीभक्त होकर जन्मग्रहण करें तब ही ऐसा लोकातीत मेल हो सकता है ॥ ९५ ॥ क्योंकि ऐसे मेलमें विघ्न बहुत ही होते हैं इस विषयमें मैं कुछ वर्णन करता हूं विद्वान् पितृगण सुनें ॥ ९६ ॥ हे पितृगण ! पुरुष और स्त्रीके सोलह सोलह भेद कहे गये हैं ॥ ९७ ॥ शश मृग वराह और अश्व ये पुरुषकी चार जातियां हैं इसमें अति विस्मय न करें ॥ ९८ ॥ प्रत्येक जातिमें ही प्रत्येकका अन्तर्भाव होनेसे ही पुरुषकी सोलह प्रकारकी जाति होती है यह निःसन्देह है ॥ ९९ ॥ पद्मिनी, चित्रिणी शङ्खिनी

पद्मिनी चित्रिणी चैव शङ्खिनी हस्तिनी तथा ।
एवं चतुर्विधा गीता जायतो योषितामपि ॥ १०० ॥
अन्तर्भावेन प्रत्येकं जायन्ते ताश्च षोड़स ।
समानानां समानासु दाम्पत्यप्रेमबन्धनम् ॥ १०१ ॥
स्थापितं स्याज्जगत्याश्चेत्तो मोक्षाभ्युदयौ तयोः ।
नारीणामुच्चजातिश्चेद् भवेद्यद्युभयोस्तदा ॥ १०२ ॥
एतासां प्रकृतिः सप्तश्रेण्यन्तं हि यथाक्रमम् ।
सामञ्जस्यं ध्रुवं रक्षेत्क्रममभ्युदयस्य च ॥ १०३ ॥
ततोऽशान्तिश्च दुःखञ्च जायते रोग एव च ।
नराणामुच्चजातिश्चेत्सामञ्जस्यं यथाक्रमम् ॥ १०४ ॥
सम्यगभ्युदयस्यास्ते तर्हि श्रेणीत्रयावधि ।
सामञ्जस्यस्य रक्षायां सृष्टेर्बाधा ततो भवेत् ॥ १०५ ॥
स्वधर्म्मतश्च्युता नारी स्वधर्म्माद्विच्युतो नरः ।
भवेद्यदि तदा सृष्टेः सामञ्जस्यं न तिष्ठति ॥ १०६ ॥

और हस्तिनी स्त्रियोंकी भी ये चार जातियां प्रसिद्ध हैं ॥ १०० ॥ प्रत्येकमें अन्तर्भाव होनेसे प्रत्येकके चार चार भेद होकर स्त्रीकी सोलह जातियां होती हैं यदि इन सोलह प्रकारकी पुरुषजाति और सोलह प्रकारकी स्त्रीजातिमें ठीक ठीक समान श्रेणीमें दाम्पत्य प्रेम सम्बन्ध सृष्टिमें स्थापित हो तो दोनोंके अभ्युदय और निःश्रेयस होते हैं। दोनोंमेंसे यदि स्त्रीकी जाति उच्च हो तो सात श्रेणी तक नारीकी प्रकृति यथाक्रम सामञ्जस्यकी अवश्य रक्षा करती है और अभ्युदयका क्रम बना रहता है ॥१०१-१०३ ॥ तदनन्तर अशान्ति दुःख और रोग होता है। यदि पुरुषकी जाति उच्च हो तो अभ्युदयका यथाक्रम सामञ्जस्य तीन श्रेणी तक भलीभांति रहता है तदनन्तर सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षामें बाधा होती है ॥ १४०-१४१ ॥ नारीगण यदि नारीधर्म्मसे च्युत हों और पुरुषगण पुरुषधर्म्मसे च्युत हों तो

तपःप्रधानतामेति नारीधर्म्मो यतः सदा ।
यज्ञप्रधानतामेवं नृणां धर्म्मं इति श्रुतिः ॥ १०७ ॥
ह्रीश्च श्रीर्मधुरा वाणी त्रिविधा च पवित्रता ।
निःस्वार्थश्च सतीभावो वात्सल्यं सेवनादरः ॥ १०८
पुरुषोचितभावनामङ्गीकारे सदाऽरुचिः ।
नारीणां हिगुणा अष्टवुत्तमाः कीर्तिता इमे ॥ १०९ ॥
पुरुषाणान्तु सर्वेषां पितरः ! सन्ततं भृशम् ।
स्वस्ववर्णाश्रमाचारपालनं गुण उत्तमः ॥ ११० ॥
योषितां पुरुषाणाञ्च परीक्षाऽतीव दुर्गमा ।
ऋतम्भरायुता भक्ता ज्ञानिनो मे यथार्थतः ॥ १११ ॥
पितरः ! दम्पती नूनंशक्नुवन्ति परीक्षितुम् ।
अन्यः कोऽपि न शक्नोति सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥११२॥
सामुद्रिकैस्तथा ज्योतिःशास्त्रैश्चैव स्वरोदयैः ।
एवं बहुविधै मार्गैः परीक्ष्येतेऽत्र दम्पती ॥ ११३ ॥

सृष्टि का सामञ्जस्य नहीं रहता है ॥ १०६ ॥ क्योंकि सदा नारीधर्म्म तपः प्रधान है पुरुषधर्म्म यज्ञप्रधान हैं यही श्रुति है ॥ १०७ ॥ नारीकेलिये ह्री, श्री, मधुर वचन, त्रिविध पवित्राता, स्वार्थरहित पातिव्रत्य, वात्सल्यभाव, सेवापरायणता और पुरुषोंके उपयोगी भावोंमें भावित होने में सदा अरुचि ये आठही उत्तमगुण कहे गये हैं ॥ १०८-१०९ ॥ और हे पितृगण ! सब पुरुषोंके लिये सर्वदा अपने अपने वर्णाश्रमाचारका पालन ही उत्तमगुण कहा गया है । ॥ ११० ॥ स्त्री और पुरुष परीक्षा बहुत ही कठिन है । हे पितृगण ! ऋतुम्भरायुक्त मेरे ज्ञानी भक्तहां यथार्थरूपसे स्त्रीपरीक्षा और पुरुषपरीक्षा करनेमें समर्थ हैं और कोई भी समर्थ नहीं हो सकता यह मैं आप लोगोंसे सत्य कहता हूँ ॥ १११-११२ ॥ इस जगत्में सामुद्रिकविद्या, स्वरोदयविद्या और ज्योतिषविद्यासे और इसप्रकारके

कर्तुं दाम्पत्यसम्बन्धं कैवल्याभ्युदयेच्छुभिः ।
तेषां नामानि कथ्यन्ते येषामर्ह्या विचारणा ॥ ११४ ॥
कुलं देहो गणोयोनिर्ग्रहो राशिर्दिनन्तथा ।
स्त्रीदीर्घश्चैव माहेन्द्रो राशीशो रज्जुवश्यकौ । ११५॥
वेधश्च वर्णकूटश्च भूतलिङ्गाख्कूटकम् ।
नाड़ी च गोगिनीगोत्रं जातिश्च पक्षिकूटकम् ॥११६॥
तारा तथा भकूटश्च प्रवृत्तिवर्द्धिरेव च ।
इन्द्रियाणां तथा दार्ढ्यं भावश्च पञ्चविंशकः ॥ ११७ ॥
अधिकारे समाने चेत्स्थापितः पितरो भवेत् ।
सौम्यो दाम्पत्यसम्बन्धोऽभ्युदयस्य तु का कथा ॥११८॥
मोक्षोऽपि सुलभस्तर्हि नैव कार्य्योऽत्र विस्मयः ।
एवंविधे हि दाम्पत्ये सञ्जाते जायते ध्रुवम् ॥ ११९ ॥
मत्प्रधानविभूतीनां देवानां तथा ।
ऋषीणाञ्चैव सर्वेषां सर्वथैव प्रसन्नता ॥ १२० ॥

अनेक मार्गोंसे स्त्रीपुरुष परीक्षा की जाती है ॥ ११३ ॥ दाम्पत्य-सम्बन्ध करनेके लिये अभ्युदय और कैवल्येच्छुओं को जिन बातों का विचार करना चाहिये उनके नाम कहे जाते हैं ॥११४॥ कुल शरीर, गण, योनि, ग्रह, राशि, दिन माहेन्द्र, स्त्री दीर्घ, राशि का अधिपति, रज्जु, वश्य, वेध वर्णकूट, नाडी, भूनलिङ्गाख्यकूट, योगिनीगोत्र, जाति, पक्षिकूटक, तारा, भकूट, प्रवृत्ति, इन्द्रिय--दाढर्च, वृद्धि और पच्चीसवाँ भाव ॥ ११५--११७ ॥ हे पितृगण ! यदि समान अधिकारमें कल्याणकारी दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित हो तो अभ्युदयकी तो बात ही क्या है निःश्रेयस भी सुलभ है इसमें विस्मय नहीं ही करना चाहिये। ऐसा दम्पतिसम्बन्ध होने पर ही मेरे प्रधान विभूतिरूपी आपलोगोंकी सब देवताओंकी और सब ऋषियोंकी भी सब प्रकार से ही प्रसन्नता होती हैं ॥ ११८–१२० ॥

जन्मभूमिर्भवेद्धन्या पवित्रञ्च कुलं तयोः ।
तौ स्वयं ज्ञानिनौ सन्तौ स्तः सार्वभौमधर्म्मिणौ ॥१२१॥
अथवा सन्ततिं लब्ध्वा पूर्णज्ञानैरलङ्कृताम् ।
विश्वमेतत् प्रकुर्वन्तौ धन्यं धन्यौ च तौ स्वयम् ॥१२२॥
क्षेत्ररूपतया नारी पूर्णा धैर्य्यगुणैः सदा ।
कन्यायाः पितरौ तस्माद् धैर्य्यं यौ त्रिविधं सदा ॥१२३॥
रक्षितुं शक्नुतो नूनं तथा कर्त्तुं समुन्नतम् ।
स्वामिनो ये निजस्त्रीणां धैर्य्यंवा त्रिविधं सदा॥१२४॥
स्वयं संयमिनः सन्तो नष्टुं कर्तुं न चोद्यताः ।
ते सदा प्राप्नुवन्त्येव सद्गतिं देवदुर्लभाम् ॥१२५॥
भवन्तः पितरः ! तेभ्यः स्ववाञ्छितगुणान्विताम् ।
सन्ततिञ्च बलं स्वास्थ्यं प्रयच्छन्ति स्वयं सदा॥१२६॥
गर्भाधानस्वरूपस्य यौ तु पीठस्य दम्पती ।
स्मरतः पितरः ! नित्यं मर्य्यादाञ्च पवित्रताम्॥१२७॥

उनका कुल पवित्र होता है, जन्मभूमि धन्य होती है और या तो वे स्वयं ज्ञानवान् होकर सार्व्वभौमधर्म्मके अधिकारी बनते हैं नहीं तो पूर्णज्ञानसे अलंकृत सन्ततिको प्रात करके वे इस जगत् को धन्य करते हुए स्वयं भी धन्य हो हैं ।। १२१-१२२ ।। नारीक्षेत्ररूपा होनेसे सदा धैर्य्यगुणोंसे पूर्ण है इस कारण जो पिता माता सदा ही कन्याके त्रिविध धैर्य्यकी रक्षा और उन्नतिमें समर्थ होते हैं अथवा जो पति सदा अपनी स्त्रीसे त्रिविध धैर्य्यको स्वयं संयमी रहते हुए नष्ट करनेमें उद्यत नहीं होते हैं वे सदा देवदुर्लभ सद्गतिको ही प्राप्त होते हैं ।। ११३ १२५ ।। हे पितृगण ! आपलोग उनको अपने वांछितगुणवाली सन्तति, बल और स्वास्थ्य सदा स्वतः प्रदान करते हो ।। १२६ ।। हे पितृगण ! जो दम्पती गर्भाधान रूपी पीठकी मर्य्यादा और पवित्रताको सदा स्मरण रखते हैं जो

तथा दैव्यां जगत्यां हि श्रद्धालू यौ निरन्तरम् ।
यौ स्वयोश्च सदा सत्त्वगुणलक्षणमीप्सितम् ॥ १२८ ॥
प्राप्तुं यत्नं प्रकुर्वाते सन्ततौ हि तयोर्ध्रुवम् ।
उच्चाधिकार एकादृक् सम्प्रकाशेत येन सा ॥१२९ ॥
ज्ञातुमीष्टे प्रजा पुण्यां पूर्णधर्म्माधिकारिताम् ।
नात्र कश्चन सन्देहो विद्यते पितृपुङ्गवाः ! ॥ १३० ॥
उक्तज्ञानप्रचारेण कृपातो भवतां तथा ।
एतच्छुभं फलं लोक आविर्भवितुमर्हति ॥ १३१ ॥
वर्णाश्रमाणां मर्य्यादा-रक्षणेनैव निश्चितम् ।
मर्त्यजातिषु प्राप्यन्तेऽधिकारा इत्थमुन्नताः ॥ १३२ ॥
धर्म्मा वर्णाश्रमाः सन्तः प्रवृत्ते रोधकाः क्रमात् ।
निवृत्तेः पोषकाश्चैव मर्त्यान्तःकरणे मम ॥ १३३ ॥
पराभक्तेः प्रजायन्ते आत्मज्ञानस्य वै पुनः ।
विकाशका न सन्देहो विद्यते पितरो ध्रुवम् ॥ १३४ ॥

दैव जगत् पर निरन्तर श्रद्धालु होते हैं और जो सदा अपनेमें सत्त्वगुणके लक्षण प्राप्त करनेका प्रयत्न करते हैं उनकी सन्ततिमें अवश्य ही ऐसे उच्च अधिकार प्रकट होते हैं कि जिससे वह प्रजा धर्म्मके पवित्र पूर्ण अधिकारको जान सक्ती है, हे पितृवरो ! इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ १२७-१३० ॥ जगत्में उक्त ज्ञानके प्रचार द्वारा और आप लोगों की कृपा से यह शुभ फल प्रकट होसक्ता है ॥१३१॥ वर्णाश्रममर्य्यादाकी सुरक्षाके द्वारा ही मनुष्यजातिमें ऐसे उच्च अधिकार निश्चय प्राप्त हो सकते हैं ॥ १३२ ॥ वर्णाश्रमधर्म्म यथा-क्रम प्रवृत्ति रोधक और निवृत्ति पोषक होकर ही मनुष्यके अन्तः-करणमें मेरी पराभक्ति और आत्मज्ञानके विकाशक होते हैं हे पितरो ! इसमें सन्देह ही नहीं है ॥ १३३-१३४ ॥ वर्ण और आश्रम

वर्णाश्रमानुकूलस्य सदाचारस्य रक्षया ।
मनुष्याणां पथो रोधः स्यात् क्रमाभ्युदस्य न ॥१३५॥
नासौ निर्बीजतामेत्य मर्त्यजातिः प्रणश्यति ।
यथाकालन्तु तस्यां हि धर्म्मस्य शाश्वतस्य वै ॥ १३६ ॥
सार्वभौमस्वरूपस्य ह्यात्मज्ञानं प्रकाशकम् ।
असंशयं विकाशेत कदाचिन्नात्र विस्मयः ॥ १३७ ॥
आर्य्यजातेर्बीजरक्षाऽऽध्यात्मिकी च क्रमोन्नतिः ।
पितृणां वर्द्धनाऽनल्पा तत्कृपाप्राप्तिरेव च ॥ १३८ ॥
सहोच्चैर्दैवलोकैश्च सम्बन्धस्थापनं भृशम् ।
विबुधानां प्रसादश्च विश्वमङ्गलसाधकः ॥ १३९ ॥
तथा स्वभावसंसिद्धसंस्कारोदयसाधनम् ।
बीजरक्षाऽऽत्मबोधस्य कैवल्याधिगमोऽपि च ॥ १४० ॥
वर्णाश्रमाणां धर्म्माणामष्टावेतानि मुख्यतः ।
प्रयोजनानि सम्प्राहुः कर्म्मतत्त्वाब्धिपारगाः ॥ १४१ ॥

धर्म्मके अनुकूल सदाचारकी सुरक्षाके द्वारा मनुष्यजातिके क्रमाभ्युदयके पथका अवरोध नहीं होता ॥ १३५ ॥ वह मनुष्यजाति निर्वीज होकर नष्ट नहीं हो जाती है और उसमें यथासमय सनातन धर्म्मके सार्व्वभौमरूपप्रकाशक आत्मज्ञानका विकाश भी हो जाता है इसमें आश्चर्य नहीं ॥ १३६-१३७ ॥ आर्य्यजातिकी बीजरक्षा, आध्यात्मिक क्रमोन्नोति, पितरोंका संम्वर्द्धन और उनकी विशेष कृपाप्राप्ति, दैवीऊर्द्धवलोकोंके साथ अतिशय सम्वन्ध स्थापन, विश्वमंगलकारिणी देवताओंकी प्रसन्नता, स्वभाविक संस्कारोंका उदय करना, आत्मज्ञानकी वीजरक्षा और कैवल्याधिगम ये वर्णाश्रम धर्म्मके आठ प्रधान प्रयोजन कर्म्मतत्त्वपारगोंने कहे हैं ॥ १३८-१४१ ॥ हे पितृगण! रजवीर्य्यकी शुद्धिसे ही

रजोवीर्य्यविशुद्धयैव भवत्येव सुरक्षितम्।
आधिभौतिकसंशुद्धेर्वीजं नु पितरो ध्रुवम्॥ १४२॥
विदित्वा पीठमर्य्यादां संस्कारशुद्धिपूर्विकाम्।
भवताञ्च कृपापुञ्जैः पितरो रक्षितं भवेत्॥ १४३॥
आधिदैविकसंशुद्धेर्वीजं नूनं चिरन्तनम्।
सत्त्वलक्षणसङ्घो वै स्वस्मिञ्छश्वद्विकाशितः॥१४४॥
क्रियमाणैः प्रयत्नैश्चे द्भवेद्बीजं सुरक्षितम्।
नूनमध्यात्मसंशुद्धेर्नात्र कार्य्या विचारणा॥ १४५॥
त्रिविधानां हि बीजानां रक्षयैवंविधैः क्रमैः।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मस्य बीजं स्याद्रक्षितं ध्रुवम्॥ १४६॥
स्याद् देशकालपात्राणां सत्येवं परिवर्त्तनात्।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्मस्य प्रचारः समये ध्रुवम्॥ १४७॥
अनेकासु हि बाधासूपस्थितास्वपि सर्वथा।
भवन्तः स्युः सचेष्टाश्चेन्नारीषु च तथा भृशम्॥१४८॥

आधिभौतिक शुद्धिका बीज निश्चयही सुरक्षित होता है॥ १४२॥ हे पितृगण! संस्कारशुद्धिपूर्व्वक पीठमर्य्यादाको जानकर और आप लोगोंकी कृपासे अधिदैव शुद्धिका चिरन्तन बीज अवश्य बना रहता है और अपनेमें सत्त्वगुणके लक्षणसमूह सर्वदा विकसित करनेके प्रयत्नद्वारा अध्यात्मशुद्धिकी बीजरक्षा अवश्य होती है इसमें विचार न करें॥ १४३-१४५॥ इस प्रकारके क्रमसे त्रिविध बीजकी सुरक्षाद्वारा ही वर्णाश्रमधर्म्मके बीजकी अवश्य सुरक्षा होती है॥ १४६॥ ऐसा होने पर देश काल और पात्रके परिवर्त्तनसे वर्णाश्रमधर्म्मका प्रचार यथासमय होना अवश्य सम्भावी है॥ १४७॥ हे विज्ञ पितृगण! अनन्त बाधाओंके सर्वथा उपस्थित होने पर भी यदि आपलोग अत्यन्त सचेष्ट रहें और

सतीधर्म्मस्य संशुद्धीरजोवीर्य्यस्य पुंव्रजे ।
भवेद् भोः पितरो विज्ञाः ! भक्तिर्मयि च संस्थिता॥१४९॥
धर्म्मस्यास्य तदा नूनं भवेद्बीजं सुरक्षितम् ।
श्रुतिरेषा वरीवर्त्ति पितरो नात्र संशयः ॥ १५० ॥

इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
सदाशिवपितृसंवादे पिण्डसृष्टिनिरूपणं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

नारीमें सतीत्वधर्म्म और पुरुषोंमें रजवीर्य्यकी शुद्धि और मेरी भक्ति वनी रहे तो इस धर्म्मकी वीजरक्षा अवश्य होती है। हे पितृगण ! यही श्रुति है। इसमें सन्देह नहीं ॥ १४८-१५० ॥

इस प्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रह्मविद्यासम्बन्धी योग-
शास्त्रका सदाशिवपितृसंवादात्मक पिण्डसृष्टिनिरू-
पणनामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

चक्रपीठशुद्धिनिरूपणम्

सदाशिव उवाच ॥ १ ॥

चिज्जडग्रन्थिसाहाय्याज्जीवा उत्पद्य भूरिशः ।
उद्भिज्जं लक्षविंशं हि स्वदेजं रुद्रलक्षकम् ॥ २ ॥
एकोनविंशलक्षञ्च नूनमण्डजमद्भुतम् ।
जरायुजं चतुस्त्रिंशल्लक्षकं पितरस्तथा ॥ ३ ॥
अनार्य्यमानवानाञ्च लक्षद्वयमनुक्षणम् ।
अशीतिः षट् च लक्षाणि योनीर्भ्रान्त्वा मुहुर्मुहुः॥ ४ ॥
विशालं तत्पथं दुर्गमतिक्रम्यैव निश्चितम् ।
आर्य्यभावं लभन्तेऽन्ते नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ५ ॥
चतुर्णां भूतसङ्घानां गतिरास्ते निरापदा ।
धारावाहिकशीला च नितान्तं सरला तथा ॥ ६ ॥
तत्र प्रत्येकजीवानां वर्गान् रक्षन्त्यलं सुराः
तेषां त एव कथ्यन्तेऽधिदेवाश्च स्वधाभुजः ! ॥ ७ ॥

सदा शिवबोले ॥ १ ॥

चिज्जडग्रन्थिकी सहायतासे अनेक जीव उत्पन्न होकर हे पितृगण ! २० ही लक्ष उद्भिज्जयोनि ११ लक्ष स्वेदजयोनि १९ लक्ष ही अद्भुत अण्डजयोनि ३४ लाख जरायुजयोनि और २ लाख अनार्य्य मनुष्य योनि इन ८६ लक्षयोनियोंमें प्रतिक्षण वारम्बार भ्रमण करके उस विशाल पथको अतिक्रमण करते हुए ही अन्तमें निश्चय आर्य्यभावको प्राप्त करते हैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥२–५॥ चतुर्विध भूतसङ्घकी गति निरापद नितान्त सरल और धारावाहिक है ॥ ६ ॥ उनमें प्रत्येक जीव श्रेणियोकी देवतागण पूर्णरूपसे रक्षा करते हैं और हे पितृगण ! वे ही उनके अधिदैव कहाते हैं ॥७॥

त एव क्रमशो जीवान् स्वाधिकाराप्तयोनितः ।
नयन्त्युच्चैस्तरां योनिं पिण्डनाशादनन्तरम् ॥ ८ ॥
सम्पूर्णावयवा जीवा मर्त्यपिण्डं गतास्ततः ।
भूतिदाः ! भवतां नूनं साहाय्यं प्राप्तुमीशते ॥ ९ ॥
क्रमशो वस्तु साहाय्यं समासाद्योत्तरोत्तरम् ।
गच्छन्त्यसंशयं पुण्यामार्य्यकोटिं समुन्ताम् ॥ १० ॥
ततोऽप्यार्य्यपदं प्राप्ताः शुद्धयोश्चक्रपीठयोः ।
अधिकारीभवन्तो हि साहाय्याच्छुद्धयोस्तयो ॥ ११ ॥
प्राप्य मामधिगच्छन्ति मत्सायुज्यं न संशयः ।
जीवत्वं हि तदा तेषां जीवानां नश्यति स्वयम् ॥ १२ ॥
अनुभूतमिदं त्वास्ते युष्माभिः पितरो ध्रुवम् ।
मर्त्त्ययोनिं समासाद्य जीवाः सर्वे समन्ततः ॥ १३ ॥
आवागमनचक्रेषु प्रविशन्ति न संशयः ।
पश्यन्ति किन्तु वै चक्रं भाग्यवन्तो न केऽप्यदः ॥१४॥

और वे ही क्रमशः जीवों को अपने अधिकारसे प्राप्त योनिसे उन्नततरयोनि में पिण्डके नाशके अनन्तर पहुंचा दिया करते हैं ॥८॥ हे पितृगण ! अन्तमें जीव पूर्णावयव होकर मनुष्य पिण्डको प्राप्त करके आपलोगोंकी सहायताको प्राप्त कर सकते हैं ॥ ९ ॥ और क्रमशः आपलोगोंकी सहायता उत्तरोत्तर प्राप्त करते हुए निश्चय ही आर्य्यकोटि में पहुँच जाते हैं ॥ १० ॥ आर्य्यपदवीको प्राप्त करके तदनन्तर भी चक्रशुद्धि और पीठशुद्धि के अधिकारी बनकर उन शुद्ध चक्र और शुद्ध पीठों को सहायतासे मुझको प्राप्त करके निःसन्देह सत्सायुज्यको लाभ करते हैं तब उन जीवोंका जीवत्व स्वतः ही नष्ट हो जाता है ॥ ११-१२ ॥ हे पितृगण ! यह तो आपलोगोंके अनुभव में है ही कि मनुष्ययोनिको प्राप्त करके सब जीव सब ओरसे आवागमनरूपी चक्र में प्रवेश करते हैं। परन्तु कोई भी भाग्यवान् उस

परिधिस्तस्य चक्रस्य द्विधा भिन्नोऽस्त्यसंशयम् ।
तत्रैकः प्रेतलोकोऽस्ति मृत्युलोकोऽपरस्तथा ॥ १५ ॥
असौ चक्रस्य परिधिः पितृलोकावधि क्रमात् ।
विस्तीर्य्य प्रथमं पश्चान्नरके स्वरपि ध्रुवम् ॥ १६ ॥
विस्तृणाति तपोलोकपर्य्यन्तं नात्र संशयः ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिर्विश्वभूतिदाः ! ॥१७॥
तमःप्रधानं प्रथमं चक्रमेतदनन्तरम् ।
तमोरजःप्रधानञ्च रजःसत्त्वप्रधानकम् ॥ १८ ॥
शुद्धसत्त्वप्रधानं हिजायते तदनन्तरम् ।
ऊर्द्ध्वलोकं ततो मृत्युलोकं व्याप्नोति केवलम् ॥१९॥
परिधिस्तस्य चक्रस्य ततोऽन्ते मयि लीयते ।
मृत्युलोके गतिस्तस्य स्वतो हि सहजा सती ॥ २० ॥
अथवाऽऽसाद्य शुक्लत्वं सत्यलोवधि ध्रुवम् ।
गत्वा तत्र तदैवाशु सर्वथैव प्रशाम्यति ॥ २१ ॥

चक्रको नहीं ही देखते हैं ॥ १३-१४ ॥ उस चक्र की निःसन्देह दो परिधि होती है एकको प्रेतलोक कहते हैं और दूसरेको मृत्युलोक कहते हैं ॥ १५ ॥ चक्रकी वह परिधि प्रथम क्रमशः पितृलोक तक विस्तार होती है तदनन्तर नरलोक में विस्तार होती है और वह परिधि स्वर्गलोकमें भी विस्तार होकर ही तपलोक तक पहुँच जातीं है इसमें सन्देह नहीं है। हे पितृगण ! आपलोगोंको इस विषय में आश्चर्य नहीं करना चाहिये ॥ १६ १७ ॥ यह आवागमन चक्र प्रथम तमः प्रधान तदनन्तर तमरजः प्रधान तदनन्तर रजः सत्त्वप्रधान ही हो जाता है तदनन्तर उस चक्रकी परिधि केवल ऊद्र्ध्वलोक और मृत्युलोक व्यापी ही रहती हैं और अन्तमें वह चक्र मुझमें लय को प्राप्त होता है उस समय ही उस चक्र की गति शीघ्र स्वतः ही सहज होकर यातो मृत्युलोक में ही शान्त होती है अथवा शुल्कता को प्राप्त करके सत्यलोक तक ही पहुँचकर वहाँ सर्वथा ही शान्त होती है ॥

अत्यन्तं दुःशमं हीदमावागमनचक्रमम् !
भेत्तुमेनमलं सन्ति मद्भक्ता एव केवलम् ॥ २२ ॥
परिधिष्वत्र जीवान् हि कृतकर्म्मानुसारतः ।
एकतोऽन्यत्र भूम्यां वै भिन्ना देवा नयन्त्यलम् ॥ २६ ॥
शुक्ला कृष्णा च सहजा त्रिविधा वर्त्तते गतिः ।
एतास्तिस्रोऽपि सन्त्येव देवसाहाय्यसात्कृताः ॥२५॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
चतुर्धा संविभक्तोऽस्ति क्रमः कृष्णगतेरिति ॥ २५ ॥
क्षमन्ते नैव ये भेत्तुं क्रममेतं चतुर्विधम् ।
जीवास्तीव्रशरीराद्यासक्तियुक्तास्त एव हि ॥ २६ ॥
मूर्च्छिता यान्ति पितरः ! प्रेतलोकं न संशयः ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः संशयोऽथवा ॥ २७ ॥
पारयन्ते तु ये भेत्तुं गतेरुक्तं चतुष्क्रमम् ।
कपूयाचरणास्ते चेन्नरकानाप्नुवन्त्यहो ॥ २८ ॥

॥ १८--२१ ॥ इस आवागमनचक्रका शान्त होना वहुत ही कठिन है केवल मेरे भक्तगण ही इस चक्रको भेदन करनेमें समर्थ होते हैं ॥२२॥ जीवोंके कृतम्मोंके अनुसार उनको इस चक्रकी इन परिधियोंमें एक जगहसे दूसरी जगह पहुंचानेका कार्य्य विभिन्न देवतागण किया करते हैं ॥ २३ ॥ गति तीन प्रकारकी होती है उनके नाम कृष्ण, शुक्ल और सहज हैं और ये तीनों ही गतियां देवताओंकी सहायताके अधीन ही हैं ॥ २४ ॥ कृष्ण गतिका क्रम धूम रात्रि कृष्णपक्ष और छः मास दक्षिणायन इस प्रकारसे चतुर्धा विभक्त है ॥ २५ ॥ हे पितृगण ! जो इस चतुर्विध क्रमका भेदन करनेमें समर्थ नहीं ही होते, वेही तीव्रदेहाद्यासक्तिविशिष्ट जीव मूर्च्छित होकर निःसन्देह प्रेतलोकको प्राप्त होते हैं इस विषयमें आपलोगोंको संशय और विस्मय नहीं करना चाहिए ॥ २६--२७ ॥ जो कृष्ण-गतिके उक्त चतुक्रमको भेदन करनेमें समर्थ होते हैं वे अहो !

मध्यमाचरणा यान्ति पितृलोकं न संशयः ।
गच्छन्त्युत्तमकर्माणः स्वर्लोकं पितरः ध्रुवम् ॥ २९ ॥
पुण्येन महता लभ्या गतिः शुक्ला स्वधाभुजः ! ।
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ॥ ३० ॥
चतुर्धा संविभक्तो हि क्रमः शुक्लगतेरयम् ।
अदोऽभिमानिनो देवा जीवाञ्छुक्लगतिं गतान् ॥३१॥
उच्चैः स्वर्लोकतः पूर्वं नीत्वा लोकाननन्तरम् ।
आवागमनचक्रे हि शान्ते सत्यं नयन्त्यहो ॥ ३२ ॥
तत्र ते श्रेष्ठकर्म्माणः प्राणिनः सूर्य्यमण्डलम् ।
विभिद्य प्राप्नुवन्त्येव मत्सायुज्यं न संशयः ॥ ३३ ॥
सहजाया गते रास्ते गतिरत्यन्तमद्भुता ।
कश्चिन्नैवात्र सन्देहो विद्यते विश्वभूतिदाः ! ॥ ३४ ॥
गतिं मे सहजामाप्ता भक्ताः कौलालचक्रवत् ।
पिण्डं स्वं ज्ञानिनो नूनं जीवन्मुक्ता हि बिभ्रति ॥ ३५ ॥

अधमकर्मा होनेसे नरकलोक, मध्यकर्मा होनेसे निःसन्देह पितृलोक और उत्तमकर्म्मा होनेसे हे पितृगण ! निश्चय ही स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं ॥२८--२९॥ हे पितृगण ! शुक्लगति उग्र पुण्यसे प्राप्त होती है उसके क्रमके चार भेद हैं, यथा-ज्योतिः, दिन, शुक्लपक्ष और छः मास उत्तरायण । इनके अभिमानी देवतागण इस गतिशील जीवोंको स्वर्गलोकसे उच्चलोकोंमें प्रथम पहुँचाकर तत्पश्चात् आवागमनचक्रके शान्त होनेपर ही अहो ! सत्यलोकमें पहुंचाते हैं ॥ ३०--३२ ॥ वहांसे सूर्य्यमण्डल भेदन करके वे श्रेष्ठ-कर्म्मा जीव निःसन्देहही मत्सायुज्यको प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥ सहज गतिकी गति अति विलक्षण है हे पितृगण ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥ ३४ ॥ सहजगति प्राप्त मेरे जीवन्मुक्त ज्ञानीभक्त कुलालचक्रवत् अपने पिण्डकों निश्चय धारण करते हैं ॥ ३५ ॥

शक्तेः कौलालचक्रस्य भ्रामिकाया लये सति ।
तद्धि चक्रं यथा सद्यः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥
नष्टे प्रारब्धजे पिण्डे जीवन्मुक्तास्तथैव मे ।
लीयन्ते ज्ञानिनो भक्ता ध्रुवं मय्येव भव्यदाः ॥३७॥
आकाशपतिता वारिबिन्दवो वारिधाविव ।
वस्तुतः सहजामाप्ता जीवन्मुक्ता हि प्राणिनः ॥ ३८ ॥
वासनायाः क्षये जाते तत्त्वज्ञानोदये सति ।
सार्द्धं मनोविनाशेन विमुक्ताः पूर्वमेव ते ॥ ३९ ॥
सहजां गतिमाप्तानां जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।
आवागमनचक्रं वै मृत्युलोके हि शाम्यति ॥ ४० ॥
शुक्लां गतिमवाप्तानां सतां प्रारब्धशालिनाम् ।
सूर्य्यमण्डलसम्भेदकाले चक्रन्तु शाम्यति ॥ ४१ ॥
पितरो वर्णयित्वैता जीवानां त्रिविधा गतीः ।
साम्प्रतं जीवपिण्डानां गतीर्वो वर्णयाम्यहम् ॥ ४२ ॥

जिसप्रकार कुलालचक्र भ्रमणकारिणी शक्तिके लय होनेपर तत्काल ही स्वयं ही शान्त हो जाता है ॥ ३६ ॥ हे पितृगण ! उसीप्रकार मेरे जीवन्मुक्त भक्त प्रारब्ध जनित पिण्डके नाश होने पर समुद्र में आकाशपतित वारिबिन्दुकी नाई मुझमें ही निश्चय लय हो जाते हैं । वस्तुतः सहजगति प्राप्त ही जीवन्मुक्त जीव वासनाक्षय, तत्त्वज्ञान-लाभ और मनोनाशके साथ ही साथ पहले ही मुक्त हैं ॥ ३७-३९ ॥ आवागमनचक्रकी शान्ति सहजगति प्राप्त जीवनन्मुक्तके लिये मृत्यु-लोक में ही निश्चय होती हैं ॥ ४० ॥ और शुक्लगतिप्राप्त प्रारब्धवान् महापुरुषों के लिये सूर्य्यमण्डल भेदन करते समय होंती है ॥ ४१॥ हे पितृगण ! इन जीवकी त्रिविध गतियोंका वर्णन करके अब मैं जीवपिण्डकी गतियां जिनके साथ आपलोंगोंके अधिकारका

मुख्यं सम्बध्यते याभिर्भवतामधिकारिता।
सावधानैर्भवद्भिस्ताः श्रूयन्तां वै स्वधाभुजः ! ॥ ४३ ॥
जीवानां जीवभावाय जीवपिण्डप्रधानता।
सदसत्कर्म्मणां भोगो विना पिण्डं न सम्भवेत्। ॥४४॥
कर्म्मस्वातन्त्र्यलाभेऽपि यतस्तन्मुख्यताऽस्ति हि।
जैवैशसहजानां हि सर्वेषामेव कर्म्मणाम् ॥ ४५ ॥
साहाय्याज्जीवपिण्डानामेव भोगः प्रजायते।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ! ॥ ४६ ॥
सहजो मानवो दैवो जीवपिण्डास्त्रिधा मतः।
मर्त्त्येभ्यश्चेतरे निम्ना भूतसङ्घाश्चतुर्विधाः ॥ ४७ ॥
यैस्तु कर्म्मफलं पिण्डैर्भुञ्जते सहजा हि ते।
मर्त्त्योपयुक्तपिण्डा हि कथ्यते मानवाभिधाः ॥ ४८ ॥
दैवपिंडाश्च ये व्याप्ता भुवनानि चतुर्दश।
वर्त्तन्ते पितरो दैव-भोगायनरूपिणः ॥ ४९ ॥

प्रधान सम्धन्ध है उनका वर्णन आपलोगोंसे करता हूँ, हे पितृगण ! आपलोग इनको सावधान होकर ही सुनें ॥ ४२--४३ ॥ जीवोंके जीवत्वके लिये जीवपिण्डकी प्रधानता है क्योंकि विना पिण्डके सत् असत् कर्म्मका फलभोग असम्भव है और कर्म्म करनेकी स्वाधीनता प्राप्तिमें भी जीवपिण्डका प्राधान्य है चाहे जैव कर्म्म हो चाहे ऐश कर्म्म हो और चाहे सहज कर्म्म हो सबका ही जीव--पिण्डकी सहायतासे ही भोग होता है, हे पितृगण ! इस विषय में आपलोगोंको विस्मय नहीं ही करना चाहिये ॥ ४४--४६ ॥ सहज मानव और दैवरूपसे जीवपिण्ड त्रिविध होता है, सहजपिण्ड वे ही हैं जिनके द्वारा मनुष्योंसे इतर निम्नश्रेणीके चतुर्विध भूतसंघ कर्म्मफल भोग करते हैं, मनुष्यके उपयोगी पिण्डों कों मानवपिण्ड कहते हैं ॥ ४७-:४८ ॥ और हे पितृगण ! चतुर्दश भुवनस्थित दैव

त्रिविधा एव नन्वेते वर्त्तन्ते पाञ्चभौतिकाः ।
उपादानेषु किन्त्वेषां प्रभेदो वर्त्तते महान् ॥ ५० ॥
रीतिभिः सहजाभिर्वै पिंडास्ते सहजाभिधाः ।
निर्मीयन्त उपादानैः पार्थिवैरेव केवलैः ॥ ५१ ॥

सूक्ष्मैर्दैवैरुपादानैर्यथायोग्याधिकारतः ।
निर्मीयन्ते न सन्देहो दैवाः पिण्डाः पृथग्विधाः ॥ ५२ ॥
प्रकृत्याऽलौकिकी दैवी शक्तिस्तत्र विराजते ।
नैवात्र विस्मयः कश्चित्संशयो वा विधीयताम् ॥ ५३ ॥

भवद्भिशिष्टसाहाय्याल्लब्धानां किन्तु भूतिदाः ! ।
पिण्डानां मानवीयानां वैलक्षण्यं किमप्यहो ॥ ५४ ॥
एते शक्तिविशेषाणां वर्त्तन्ते पितरो ध्रुवम् ।
आकर्षणोपयोगित्वाच्चतुर्वर्गफलप्रदाः ॥ ५५ ॥
निःश्रेयसफलोत्पन्नकारिणो विटपस्य हि ।
मानवीयो हि पिण्डोऽयं वीजमास्ते न संशयः ॥ ५६ ॥

भोगायतनरूप जो पिण्ड हैं वे दैवपिण्ड कहाते हैं ।।४९।। ये तीनों पिण्ड ही निश्चय पाञ्चभौतिक हैं परन्तु इनके उपादान में महान् प्रभेद है ।। ५० ।। सहजपिण्ड केवल पार्थिव उपादानोंसे ही सहज रीतिसे ही निर्मित होते हैं ।। ५१ ।। नानाविध दैवीपिण्ड सूक्ष्मदैवी उपादानोंसे यथायोग्य अधिकारानुसार निःसन्देह निर्मित होते हैं ।। ५२ ।। क्योंकि उनमें लोकातीत दैवी शक्तिका विकाश स्वाभाविक रूपसे विद्यमान रहता है, इस विषयमें कोई विस्मय अथवा संशय नहीं ही करें ।। ५३ ।। परन्तु हे पितृगण ! आपलोगोंकी विशेष सहायतासे प्राप्त जो मानव पिण्ड है अहो ! उनकी विचित्रता कुछ और ही है ।। ५४ ।। हे पितृगण ! वे विशेष शक्तियोंके आकर्षणके उपयोगी होने से ही चतुर्वर्गफलप्रद हैं ।। ५५ ।। यह मानव पिण्ड ही निःश्रेयस फल उत्पन्नकारी वृक्षका ही निःसन्देह बीजस्वरूप हैं

एतन्निःश्रेयसं नूनं वर्त्तते देवदुर्लभम् ।
यस्मान्न पुनरावृत्तिस्तन्निःश्रेयसमुच्यते ॥ ५७ ॥

पिण्डानां मानवीयानां मुख्यत्वे पितरो ध्रुवम् ।
भवन्तो हेतवस्सन्ति प्रधाना नात्र संशयः ॥ ५८ ॥
महत्त्वद्योतकं नूनमेतदेवास्ति वो यतः ।
अतोऽदःस्मरणादेव मनुष्याणां क्रमोन्नतौ ॥ ५९ ॥

सहेतु रक्षितुं सृष्टेः सामञ्जस्यं तथा क्षमाः ।
यूयमेवाऽत्र कर्त्तव्ये धन्या भवितुमर्हथ ॥ ६० ॥
जीवसृष्टिरहस्येषु मानवानाञ्च किंविधम् ।
जन्ममृत्युगतं गुह्यं वैलक्षण्यं हि वर्त्तते ॥ ६१ ॥

पितरः ! तद्ब्रवीम्यद्य श्रूयतां सुसमाहितैः ।
कोषः प्राणमयोऽस्त्यस्य साहाय्यात्पितरो ध्रुवम् ॥६२॥
दैव्याः शक्तेर्विकाशस्य देवानामासनस्य वा ।
उपयोगी जायतेऽसावावर्त्तः पीठ उच्यते ॥ ६३ ॥

॥ ५६ ॥ यह निःश्रेयस देवताओंके लिये भी दुर्लभ है, जिससे-- पुनरावृत्ति न हो उसको निःश्रेयस कहते हैं ॥ ५७ ॥ मानवपिण्डोंके प्राधान्यके विषय में हे पितृगण ! आपलोग ही प्रधानकारण हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५८ ॥ क्योंकि यहीं आपलोंगोंका निश्चय महत्व-- सूचक है इसकारण इसको स्मरण रखने से ही आपलोग मनुष्योंकी क्रमोन्नति में और सहेतुक सृष्टिसामञ्जस्यकी रक्षा करने में समर्थ होते हुए इस कर्त्तव्यमें धन्य हो सकते हैं ॥५९-६० ॥ हे पितृगण जीवसृष्टिरहस्योंमें मनुष्योंके जन्ममृत्युकी कैसी गुह्य विचित्रता है सो अभी कहता हूँ सुसमाहित होकर सुनो। हे पितृगण ! प्राणमयकोष की सहायतासे ही दैवीशक्ति के विकाशके अथवा देवताओंके आसनके उपयोगी जो आवर्त्त वनता है उसको

स्वाभाविक्यस्वभावा वा पीठस्योत्पादनाय या ।
विधीयते क्रिया सम्यक् सत्सुकौशलपूरिता ॥ ६४ ॥
चक्रं तदेव सम्प्राहुर्योगतत्त्वविशारदाः ।
नात्र कश्चन सन्देहो विद्यते विश्वभूतिदाः ! ॥ ६५ ॥
पीठोत्पादकसामर्थ्यं मर्त्यपिंडो बिभर्त्यसौ ।
आवागमनचक्रस्याश्रयः स्वाभाविकस्य हि ॥ ६६ ॥
अनेकभेदसत्त्वेऽपि पीठस्याति प्रधानतः ।
भेदश्चतुर्विधो योऽसौ प्रोच्यते वः पुरोऽधुना ॥६७॥
प्रथमं स्थावरं पीठं यथा तीर्थादिगोचरम् ।
द्वितीयं सहजं पीठं दम्पतीसङ्गमे यथा ॥ ६८ ॥
पीठं तृतीयकं दैवमिन्द्रलोकादिकं यथा ।
चतुर्थं यौगिकं पीठं भगवद्विग्रहोद्भवम् ॥ ६९ ॥
अथवा यन्त्रसम्भूतं पितरो वर्त्तते यथा ।
अनेकभेदसत्त्वेऽपि चक्रश्चास्ते चतुर्विधम् ॥ ७० ॥

पीठ कहते हैं ॥ ६१--६३॥ पीठके उत्पन्न करनेके लिये जो स्वाभाविक या अस्वाभाविक सत्सुकौशलपूर्ण क्रिया सम्यक्रूपसे की जाती है उसीको योगतत्त्वज्ञ चक्र कहते हैं, हे पितृगण ! इसविषयमें कोई सन्देह नहीं है । ६४--६५ ॥ यह मानवपिण्ड पीठ उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रखता है ओर यह मानवपिण्ड स्वाभाविक आवागमन-चक्रका आश्रय ही है ॥ ६६ ॥ पीठके भेद अनेक होने पर भी प्रधा-नतः पीठ जो चार श्रेणी में विभक्त है उसको अभो आवलोगोंके सामने कहता हूँ ॥ ६७ ॥ प्रथम स्थावरपीठ यथा-तीर्थादि, द्वितीय सहजपीठ, जैसा कि नरनारीके सङ्गम समयमें उत्पन्न होता है, तृतीय दैवीपीठ, यथा--इन्द्रलोकादि और चौथा यौगिकपीठ, यथा हे पितृगण ! भगवद्विग्रह और यन्त्रादि में होता है। चक्र भी वह

आवागमनचक्रादि तत्राद्यं सहजं जगुः ।
द्वितीयं कीर्त्तितं चक्रं तद्वद्ब्रह्मांडनामकम् ॥ ७१ ॥
ग्रहोपग्रहभादीनामधिकारस्थितिर्यथा ।
ज्ञेयं स्वाभाविक चक्रमेतद्द्वयमसंशयम् ॥ ७२ ॥
सगर्भं स्यात्तृतीयं तद्ब्रह्मचक्रादिकं यथा ।
अगर्भनामकं चक्रं चतुर्थं समुदाहृतम् ॥ ७३ ॥
मन्त्रशुद्ध्या क्रियाशुद्ध्या रहितञ्चैव यद्भवेत् ।
इति वः कीर्त्तितं चक्र-रहस्यं परमाद्भुतम् ॥ ७४ ॥
याथार्थ्यानुष्ठितं चक्रं सगर्भं मुक्तिदं भवेत् ।
अगर्भं पितरः ! तद्वन्नूनमभ्युदयप्रदम् ॥ ७५ ॥
परन्त्वेवंविधायां हि दशायां चक्रसाधकैः ।
भवितव्यं ध्रुवं सम्यगवश्यं मत्परायणैः ॥ ७६ ॥
एतच्चक्रद्वयं जीवैः सन्सुकौशलपूर्णया ।
क्रिययाऽनुष्ठितं यस्मादतोऽस्वाभाविकं जगुः ॥ ७७ ॥

प्रकारके होने पर भी उनकी चार श्रेणी हैं ॥ ६८--७० ॥ प्रथम सहज चक्र वह कहाता है, जैसा आवागमनचक्रादि । द्वितीय ब्रह्माण्डचक्र यथा–ग्रह उपग्रह नक्षत्रादिका अधिकारस्थान । ये दोनों निःसन्देह स्वाभाविक चक्र कहाते हैं ॥ ७१-७२ ॥ तृतीयचक्र सगर्भचक्र कहाता है, यथा–ब्रह्मचक्र शक्तिचक्रादि और चतुर्थचक्रका नाम अगर्भ है जो मन्त्रशुद्धि और क्रियाशुद्धिसे रहित ही होता है यह मैंने आपलोगोंको परम अद्‌भुत चक्रका रहस्य कहा है ॥ ७३-७४ ॥ सगर्भ चक्र यथार्थरूपसे अनुष्ठित होनेपर मुक्तिप्रद होता है और हे पितृ–गण ! अगर्भचक्र यथार्थरूपसे अनुष्ठित होनेपर ही अभ्युदयप्रद होता है ॥ ७५ ॥ परन्तु ऐसी दशामें चक्रकारी साधकोंको अवश्य ही अच्छी तरह मत्परायण होना उचित है ॥ ७६ ॥ ये दोनों चक्र सत्सुकौशल-पूर्ण क्रियासे जीवोंके द्वारा अनुष्ठित होनेके कारण अस्वाभाविक

उत्तरोत्तरमुक्तासु सप्तासु ज्ञानभूमिषु ।
क्रमारोहणकृत्यैव जायते पितरो ध्रुवम् ॥ ७८ ॥
आवागमनचक्रस्याध्यात्मशुद्धिर्न संशयः ।
वर्णाश्रमाख्यधर्म्माणां स्वाधिकारानुसारतः ॥ ७९ ॥
जायते पालनेनाऽस्य शुद्धिः खल्वाधिदैविकी ।
पितरो वो दयालब्ध्या शुद्ध्या शोणितशुक्रयोः ॥८०॥
सहजस्यापि पीठस्य क्रमोन्नत्या निरन्तरम् ।
आधिभौतिकशुद्धिर्हि नूनमस्य प्रजायते ॥ ८१ ॥
चक्रमेतद्भवन्तो हि कर्त्तुमुन्नामि सत्वरम् ।
सन्ति चक्रेश्वरा नूनं स्मरणीयं सदेति वः ॥८२॥
एवं सर्वेषु चक्रेषु शुद्धिस्त्रैविध्यमुत्तमम् ।
आवश्यकं भवत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ८३ ॥
आवागमनचक्रस्य साहाय्येनैव वोऽधुना ।
निर्मितस्यास्य संशुद्धिं वर्णयित्वा पितृव्रजाः ! ॥८४ ॥

कहाते हैं ॥ ७७ ॥ हे पितृगण ! उक्त सप्त ज्ञानभूमियोंमें उत्तरोत्तर क्रमशः आरोहण करते रहनेसे ही अवागमनचक्रकी अध्यात्मशुद्धि सम्पादित होती है इसमें सन्देह नहीं ही है। अपने अपने अधिकारानुसार वर्णाश्रमधर्म्मके पालनद्वारा ही उस चक्रकी अधिदैवशुद्धि हुआ करती है और हे पितृगण ! आपलोगोंकी कृपा प्राप्त करनेसे सहजपीठ की निरन्तर क्रमोन्नतिसे और रजवीर्य्यकी शुद्धिसे भी आवागमनचक्रकी आधिभौतिक शुद्धि निश्चय सम्पादित हुआ करती है ॥ ७८–८१ ॥ इस चक्रको शीघ्र उन्नतिशील करनेमें आपलोगही निश्चय चक्रेश्वर हैं, यह सदा आपलोगोंको स्मरण रखना चाहिये ॥ ८२ ॥ सब चक्रोंमें इसी प्रकार उत्तम त्रिविध शुद्धिकी आवश्यकता होती ही है, इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ८३ ॥ आपकी सहायतासे ही निर्म्मित इस आवागमनचक्रकी शुद्धिका

पीठशुद्धे रहस्यं वो ब्रवीमि श्रूयतामिति।
नानाविधेषु पीठेषु विधायोपासनां मम॥ ८५॥
निजपिंडस्थिते पीठे भक्ता नानाविधा यदा।
विभूतीर्में लभन्तेऽन्ते तेजो मे सर्वथा तथा॥ ८६॥
रक्षितुं पारयन्तेऽलं तदा पीठस्य जायते।
आधिभौतिकसंशुद्धिर्नात्र कश्चन संशयः॥ ८७॥
यदा तु क्रमशो दैवीं शक्तिं लब्धुं ममेशते।
साधकाः पीठसंशुद्धिस्तदा स्यादाधिदैविकी॥ ८८॥
तत्वज्ञानस्य पुण्यस्य विकाशेन यथाक्रमम्।
पीठस्याध्यात्मसंशुद्धिर्जायते च स्वधाभुजः! ॥८९॥
देशकालमनोद्रव्यक्रियाशुद्धिर्हि पञ्चधा।
शुद्धिमुख्या समाख्याता पीठशुद्धिष्वसंशयम्॥ ९०॥
तत्रापि द्रव्यसंशुद्धिः प्राधान्यं वहते खलु।
असौ योगोपयोगित्वाद्देहस्य जायते ध्रुवम्॥ ९१॥

वर्णन करके हे पितृगण! अब पीठशुद्धिका रहस्य आपलोगोंसे कहता हूँ सुनो। नाना प्रकारके पीठोंमें मेरी उपासना करके जब मेरे भक्त निजपिण्ड स्थित पीठमें नाना विभूतियोंको प्राप्त करते हैं और उस दशामें वे मेरे तेजकी सर्व्वथा रक्षा करनेमें अच्छी तरह समर्थ होते हैं तब पीठकी आधिभौतिक शुद्धि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं॥ ८४-८७॥ और क्रमशः जब साधक मेरी दैवी शक्तियोंको लाभ करनेमें समर्थ होते हैं हे पितृगण! तब पीठकी आधिदैविक शुद्धि सम्पादित होती है॥ ८८॥ और पवित्र तत्त्वज्ञानके यथाक्रम विकाश द्वारा पीठकी आध्यात्मिक शुद्धि हुआ करती है॥ ८९॥ पीठशुद्धियों के विषयमें निःसन्देह देशशुद्धि, कालशुद्धि, मनकीशुद्धि, क्रियाकी शुद्धि और द्रव्यशुद्धि ये पांच प्रकारकी शुद्धियां ही मुख्य कही गई हैं॥ ९०॥ उनमें भी द्रव्यशुद्धि ही प्रधान है क्योंकि देहके योग-उपयोगी

एवं मे ज्ञानिनो भक्ताः संशुद्धिं चक्रपीठयोः ।
समासाद्य लभन्तेऽन्ते मत्सायुज्यं न संशयः ॥ ९२ ॥
किन्त्वेवं पितरो यावज्जीवपिण्डे न सम्भवेत् ।
चाक्रिकी पैठिकी शुद्धिस्तावन्नैव त्रितापतः ॥ ९३ ॥

निस्तरेयुरहो जीवाः कदाचिद्वै कथंचन ।
तावत्कालञ्च ते जीवा आवागमनचक्रके ॥ ९४ ॥
भ्रमन्तः खलु तिष्ठन्ति नास्ति कोऽप्यत्र संशयः ।
मनुष्याः पञ्चकोषाणां समासाद्यापि पूर्णताम् ॥ ९५ ॥

आवागमन चक्रेऽस्मिन्विभ्रमन्तो निरन्तरम् ।
पिण्डेश्वरा भवन्तोऽपि भुञ्जते दुःखमुल्वणम् ॥ ९६ ॥
नरकप्रेतलोकेषु दुःखमस्त्येव दुःसहम् ।
जीवाः स्वपितृलोकादौ सुखासक्ता अपि ध्रुवम् ॥९७॥
परिणामाच्च तापाच्च संस्काराच्च समुद्भवैः ।
दुःखैः सुदुःसहैः क्लेशमाप्नुवन्ति निरन्तरम् ॥ ९८ ॥

होनेसे ही वह होती है ॥ ९१ ॥ इस प्रकार से मेरे ज्ञानीभक्त चक्र और पीठ शुद्धिको प्राप्त करके अन्तमें निःसन्देह मत्सायुज्यको प्राप्त कर लेते हैं ॥ ९२ ॥ परन्तु हे पितृगण ! जब तक जीवपिण्डमें इस प्रकार चक्रशुद्धि और पीठशुद्धिकी सम्भावना न हो तब तक अहो ! त्रितापसे जीव कभी भी किसी प्रकार निस्तार नहीं ही हो सकते हैं और तब तक वे जीव अवागमनचक्रमें घूमते ही रहते हैं इसमें कोई भी सन्देह नहीं है । मनुष्य पञ्चकोषोंकी पूर्णताको प्राप्त करके भी और पिण्डेश्वर हो जाने पर भी इस आवागमनचक्र में निरन्तर परिभ्रमण करते हुए असहनीय दुःखों को भोग करते हैं ॥ ९३-९६ ॥ प्रेतलोक और नरकलोकमें असहनीय दुःख है ही किन्तु पितृलोक और स्वर्गलोक आदिमें जीवोंके सुखभोगमें रत रहने पर भी निश्चय जीव निरन्तर दुःसह परिणामदुःख तापदुःख और संस्कारदुःखों से

मृत्युलोके ततो जन्म गृह्णते च यदा तदा।
यूयं यद्यपि तेभ्यो वै स्वस्वकर्म्मानुसारतः॥ ९९॥
उपयुक्तं प्रयच्छेत भोगायतनरूपकम्।
पित्रोः स्थूलं रजोवीर्य्यसाहाय्याद्वपुरद्भुतम्॥१००॥
परिश्रमेण महता पाञ्चभौतिकमण्डलात्।
तत्त्वानि किल सञ्चित्य तद्भोग्यान् पितरोऽनिशम्॥१०१॥
मातृगर्भेषु निर्माय स्थूलदेहान्न संशयः।
लभन्ते मातृगर्भेषु दुःखान्येव तथापि ते॥ १०२॥
गुह्यमेकं रहस्यं वो ब्रवीम्यत्र निशम्यताम्।
रजस्तमोभ्यां जनिते गुणानां तु प्रभावतः॥१०३॥
दाम्पत्योर्द्विविधे शक्ती ह्याकर्षणविकर्षणे।
भजेते समतां यावत्तावदेव सुधीरयोः॥ १०४॥
दाम्पत्यं सात्त्विकं पीठं तिष्ठेनैवात्र संशयः।
दम्पत्योर्हि तदा धैर्य्यज्ञानभक्तिप्रभावतः॥ १०५॥

क्लेश पाया करते हैं॥ ९७-९८॥ तदनन्तर जव वे मृत्युलोक में जन्म लेते हैं तव यद्यपि आपलोग उनके अपने अपने कर्म्मानुसार ही उनके उपयुक्त भोगायतनरूपी अद्भुत स्थूलशरीर उनको माता पिताके रजवीर्य्य की सहायतासे प्रदान करते हो और हे पितृगण! बड़े परिश्रमसे आप पञ्चभूतमण्डलसे निरन्तर तत्त्वों को एकत्रित करके हीमातृगर्भमें उनके भोगके योग्य स्थूल शरीरोंको निःसन्देह वना देते हो तो भी वे मातृगर्भमें दुःखोंको ही पाते हैं॥ ९९-१०२॥ इस विषय में एक गुप्त रहस्य आपलोगों से कहता हूँ सुनो। गुण-प्रभावसे दम्पतीकी रजतमजनित आकर्षण और विकर्षण शक्तिकी समता जव तक रहती है तभी तक धीर दम्पतीमें सत्त्वगुणमय दाम्पत्य पीठ वना रहता है इसमें सन्देह नहीं। उस समय दम्पती के धैर्य्य, ज्ञान और भक्तिके प्रभाव द्वारा ही उस पीठसे सन्तति सात्त्विक

तस्मात्पीठात्सन्ततिः स्यात् सात्त्विकी ज्ञानिनी तथा ।
यावत्स्यात् सात्त्विकं पीठं तद्वा सत्त्वगुणान्वितम् ॥१०६॥
दम्पत्योर्यत्नतो यावदधिकं योगयुक्तयोः ।
स्यात्तावज्ज्ञानसम्पन्ना धार्म्मिकी सन्ततिर्ध्रुवम् ॥१०७॥
गर्भावस्थानकालेऽपि भवेत्सोन्नतिशीलभाक् ।
मातृप्रसवकाले हि स्थूलदेहातिपेषणैः ॥ १०८ ॥
एतावदधिकं दुःखं लभन्ते गर्भप्राणिनः ।
जन्मान्तरस्मृतिं येन विस्मरन्ति ह्यशेषतः ॥ १०९ ॥
गर्भवासे भवन्तो हि पितरो यद्यपि स्वयम् ।
तेषां सहायका नूनं परमाः स्युस्तथाप्यहो ॥ ११० ॥
नेशतेऽनुभवं कर्त्तुं तद्दशा तत्र का भवेत् ।
कीदृशे दुःखजाले ते महाघोरे पतन्ति च ॥ १११ ॥
दाम्पत्यसङ्गरूपेषु पीठेषु सहजेष्वलम् ।
आकृष्टाः पीठसंनाशे पितृवीर्य्यकणाश्रयाः ॥ ११२ ॥

और ज्ञानवान् होगी। पीठ जितना सात्त्विक होगा अथवा योगयुक्त दम्पतीके यत्नसे पीठ जितना अधिक सत्त्वगुणमय होगा उतनी ही सन्तति धार्मिक और ज्ञानवान् होती हुई गर्भवासदशामें भी वह उन्नतिशील रहेगी। मातृगर्भ से मुक्त होते समय स्थूल शरीर के अतिशय पेषणद्वारा गर्भस्थ जीव इतना अधिक दुःख पाते हैं कि जिससे जन्म जन्मान्तरकी अपनी स्मृतिको पूर्णरूपसे भूल जाते हैं ॥ १०३-१०९ ॥ हे पितृगण ! यद्यपि गर्भवासमें आपही स्वयं उनके परम सहायक हो तथापि अहो ! आप यह नहीं अनुभव कर सकते कि, वहां उनकी क्या दशा होती है और कैसे महाघोर दुःखजालमें वे गिरते हैं ॥ ११०-१११ ॥ दाम्पत्यसङ्गरूपी सहजपीठ में आकृष्ट होकर पीठके अन्त होनेपर पिताके वीर्य्यकणको आश्रय करके मातृ-

प्रविष्टाः मातृगर्भेषु जायन्त जीवजातयः ।
पितरः ! श्रूयतां चित्रा गर्भवासकथाततिः ॥ ११३ ॥
आतिवाहिकदेहस्य सन्त्यागादेव तत्क्षणम् ।
दुर्बलाः क्लेशितास्ते च मूर्च्छामादौ व्रजन्त्यलम् ॥११४॥
आवागमनचक्रस्य परिधावत्र भूतिदाः ! ।
भवन्तो जीववर्गार्थं स्थूलं देहं नयन्त्यलम् ॥ ११५ ॥
साहाय्यात्पञ्चतत्त्वानां नात्र कश्चन संशयः ।
सूक्ष्मदेहान्विताञ्जीवांस्तत्र देवा नमन्ति च ॥ ११६ ॥
प्रथमे मासि ते जीवा अतिक्लेशन मूर्च्छिताः ।
कललानां बुदबुदानामन्येषामपि योगतः ॥ ११७ ॥
सन्ततं क्लेशमापन्ना गर्भमध्ये वसन्त्यहो ।
साहाय्याद्वस्ततोऽङ्गानि प्रत्यङ्गानि तथैव च ॥ ११८ ॥
लभमानाश्चतुर्थे तु मासे पूर्णाङ्गसंयुताः ।
भग्नमूर्छा वहून् क्लेशान् लभन्तेऽत्र निरन्तरम् ॥११९॥

गर्भमें जीवगण प्रविष्ट होते हैं। हे पितृगण ! गर्भवासकी विचित्र बातें सुनें ॥ ११२-११३ ॥ उस समय उनके आतिवाहिक देहके त्यागसे ही वे दुर्बल और क्लेशित होकर प्रथम पूर्ण मूर्च्छित हो जाते हैं ॥ ११४ ॥ हे पितृगण ! आवागमनचक्रकी इस परिधि में आप लोग जीवों के लिये पञ्चतत्त्वमण्डल की सहायतासे स्थूलदेह अच्छी तरह पहुंचाते हो इसमें कोई सन्देह नहीं है और देवतागण सूक्ष्म-देहविशिष्ट जीवोंको वहां पहुंचा देते हैं ॥११५-११६॥ अतिक्लेशसे मूर्च्छित वे जीव प्रथम मासमें कलल बुद्‌बुदादिके संयोगसे निरन्तर क्लेश प्राप्त होते हुए ! गर्भमें वास करते हैं तत्पश्चात् अङ्ग और प्रत्यङ्गोंको आपलोगोंकी सहायतासे प्राप्त करते हुए चतुर्थ मासमें पूर्णावयव होकर मूर्च्छाके भङ्ग द्वारा नानाक्लेशोंको वहां निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥११७-११९॥ माताके खाये हुए नानाप्रकारके

मातृजग्धान्नपानादिरसैर्नानाविधैरलम् ।
क्षुत्पिपासादिकं नित्यं शमयन्तो निजं मुहुः ॥१२०॥
वर्द्धन्ते किन्तु गर्भेऽत्र दुःखसीमा न वर्त्तते ।
सम्प्राप्तापूर्णसंज्ञाश्च जीवास्ते मासि सप्तमे ॥१२१॥
स्वानेकजन्मकर्म्माणि द्रष्टुं ज्ञानदृशा क्षमाः ।
कुर्वतेऽनुभवं घोरदुःखानां वहुजन्मनाम् ॥ १२२ ॥
यावद्गर्भस्थिति स्वेषां नैकेषां पूर्वजन्मनाम् ।
कर्म्माणि चिन्तयन्तोऽलं मज्जन्ति क्लेशसागरे ॥१२३॥
भूयोऽपि मूर्च्छितानां हि गर्भात्तेषां विनिस्सृतौ ।
घोरकष्टाकुलानान्तु पूर्वजन्मशतस्मृति ॥ १२४ ॥
विस्मृता जायते तेषां पितरः ! नात्र संशयः ।
ज्ञेयाऽपारकृपैवेयं प्रकृतेर्मम निश्चितम् ॥ १२५ ॥
दत्त्वा निखिलजीवेभ्यो दुःखान्येवम्विधान्यपि ।
कल्याणं विदधात्येव सर्वथा प्रकृतिर्ह्यसौ ॥ १२६ ॥

अन्नपानादिके रससे अपने क्षुत् पिपासादिकी नित्य बारम्वार सम्यक् प्रकारसे शान्ति करते हुए परिवर्द्धित होते हैं, परन्तु इसी गर्भवासमें क्लेशकी सीमा नहीं रहती है। सप्तम मासमें वे जीवपूर्ण संज्ञालाभ करके अपने अनेक जन्मोंके कर्मको ज्ञानदृष्टिसे देखने में समर्थ होकर अनेक जन्मोंके दुःखोंका अनुभव करते हैं ॥ १२०–१२२ ॥ जब तक गर्भमें रहते हैं अपने पूर्व्व अनेक जन्मोंके कर्म्मोंका स्मरण करके दुःखसागरमें अच्छी तरह डूबे रहते हैं ॥ १२३ ॥ गर्भसे मुक्त होते समय घोर क्लेशित हो सैकड़ों पूर्व्व जन्मोंकी स्मृतिको वे भूल जाते हैं, हे पितृगण ! इसमें सन्देह नहीं है। यह मेरी प्रकृतिकी निश्चय अपार कृपा ही जाननी चाहिये कि वे निखिल जीवोंको ऐसा दुःख देकर भी उनका सर्व्वथा कल्याण करती हैं ॥१२४-१२६ ॥

नो चेज्जीवगणेभ्यो हि मृत्युलोकः स्वधाभुजः ! ।
पूर्वजन्मशतैराप्तसंस्कारस्मृतिसत्तया ॥ १२७ ॥
अधिकक्लेशदायी स्यान्नरकेभ्योऽपि दुःसहः ।
धर्म्मस्य शृङ्खलायाश्च स्याद्बाधोपस्थिताऽधिका ॥१२८॥
नूनमभ्युदये तेषां भवेद्बाधाऽप्यनेकधा ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिर्विश्वभूतिदाः! ॥१२९॥
नृदेहं जीववृन्देभ्यो दद्ध्वे यूयं यदा तदा ।
पित्रोर्नूनं शरीरेण वीर्य्यांशं पितरोऽधिकम् ॥१३०॥
नारीदेहं यदा दत्थ तदांशं रजसोऽधिकम् ।
क्लीवदेहप्रदित्सायामुभयोः समतां किल ॥ १३१ ॥
दापयध्वे न सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ।
पितरो वोऽनुकम्पातो लोके पुत्रादिसम्भवः ॥ १३२ ॥
विकाशमपि देहेषु सत्त्वादेः कुरुथ स्वतः ।
तात्कालिकमनोवृत्तेः पित्रोः साहाय्यतो ध्रुवम् ॥१३३॥

नहीं तो हे पितृगण ! जीवों के लिये मृत्युलोक अनेक पूर्व्व जन्मों के संस्कारोंकी स्मृति रहनेसे नरलोकसे भी अधिक दुःखदायी होता और धर्म्मकी शृङ्खलामें भी अतिवाधा उत्पन्न होती और उनके अभ्युदयमें अनेक वाधाएं भी होतीं ही, हे पितृगण ! इसमें आपलोगोंको विस्मय नहीं ही करना चाहिये ॥ १२७ १२९ ॥ हे पितृगण ! जव पुरुषशरीर जीवोंको आप प्रदान करते हो तब वीर्य्यका अंश अधिक जव स्त्रीशरीर प्रदान करते हो तब रजका अंश अधिक और जव नपुंसक शरीर प्रदान करते हो तव उभयकी समानता आप दिलाते हो इसमें सन्देह नहीं, यह आपलोगोंको मैं सत्य कहता हूँ । और शरीरमें सत्त्व आदि गुणोंका विकाश भी आपलोग माता पिताकी उस समयकी मनोवृत्तिकी सहायतासे ही

अतश्चेत्पितरौ तत्त्वज्ञानसाहाय्यतः खलु ।
एतत्सहजपीठस्य रहस्यं हृदयङ्गमम् ॥ १३४ ॥
शक्नुयातां सदा कर्त्तुं तपसा दैहिकेन च ।
आसंयतमनःप्राणावनुरक्तौ च मय्यलम् ॥ १३५ ॥
गर्भाधानं प्रकुर्य्यामुन्नतां सन्ततिं वराम् ।
यथेष्टं पितरः ! नूनमुत्पादयितुमर्हतः ॥ १३६ ॥
सम्पाद्य त्रिविधां शुद्धिं योगयुक्तौ निरन्तरम् ।
तिष्ठेतां चेत्तदा तौ हि विमुक्तौ सृष्टिबन्धनात् ॥१३७॥
लब्धुं निःश्रेयसं क्षिप्रं शक्नुयातां न संशयः ।
यावत्प्रकाशनं लोके ज्ञानस्यास्य भविष्यति ॥ १३८ ॥
तावान् क्रमविकाशः स्यात्सत्त्वाख्यस्य गुणस्य वै ।
पूर्णं ज्ञानञ्च धर्म्मस्य संसारेऽत्र जनिष्यते ॥ १३९ ॥
आसुरी शक्तिरप्येवं पराभूतिं समेष्यति ।
भवन्तो निर्भयाः सन्तो लप्स्यन्तेऽभ्युदयं तथा ॥१४०॥

स्वतः किया करते हो ॥ १३०-१३१ ॥ अतः हे पितृगण ! यदि माता पिता तत्त्वज्ञानकी सहायतासे ही इस सहज पीठके रहस्यको हृदयङ्गम कर सकें और शारीरिक तप और प्राण तथा मनका संयम करके तथा मुझमें यथावत् अनुरक्त होकर गर्भाधान करें तो जैसी उन्नत और श्रेष्ठ प्रजा वे चाहें वैसा ही उत्पन्न कर सकते है ॥१३४-१३६॥ यदि त्रिविध शुद्धि सम्पादन करके वे सदा योगयुक्त रहे तो सृष्टि-बन्धनसे मुक्त होकर शीघ्र निःश्रेयस प्राप्त कर सकते हैं इसमें सन्देह नहीं । इस ज्ञानका जितना प्रकाश जगत्में होगा उतनाही सत्त्वगुणका क्रमविकाश होगा और धर्म्मका पूर्णज्ञान इस संसारमें उत्पन्न होगा ॥ १३७-१३९ ॥ इसीप्रकार असुरोंकी शक्ति भी पराभूत होगी,

शान्तिमन्दाकिनी दैवे राज्ये नित्यं प्रवक्ष्यति ।
सामञ्जस्यं तथा सृष्टे रक्षितं च भविष्यति ॥ १४१ ॥
इह सर्व्वे भविष्यन्ति परानन्दाधिकारिणः ।
समृद्धाः सुखसम्पन्नाः सम्पत्स्यन्ते च प्राणिनः ॥१४२॥

इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
सदाशिवपितृसंवादे चक्रपीठशुद्धिनिरूपणं
नाम तृतीयोऽध्यायः ।

और आपलोग निर्भय होकर अभ्युदय प्राप्त करोगे ॥१४०॥ दैवराज्य नित्य शान्तिमय होगा और सृष्टिका सामञ्जस्य सुरक्षित होगा ॥१४१॥ इस संसारमें सब परमानन्दके अधिकारी होंगे और सब जीवगण समृद्ध और सुखमयसम्पन्न होंगे ॥ १४२ ॥

इस प्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रम्हविद्यासम्वन्धी योग-
शास्त्रका सदाशिवपितृसंवादात्मक चक्रपीठशुद्धि
निरूपणनामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

दैवलोकनिरूपणम् ।

पितर ऊचुः ॥ १ ॥

हे विश्वनाथ ! सर्वेश ! लोकपालक ! हे विभो ! ।
त्वद्दयातो दयासिन्धो ! सर्वलोकहितप्रदम् । ॥ २ ॥
अशृण्म खलु धर्म्मस्य रहस्यं परमाद्भुतम् ।
पिण्डोत्पत्तेश्च विज्ञानं तन्नियामकमप्यहो ॥ ३ ॥
रहस्यं गहनं वर्णाश्रममूलकमुत्तमम् ।
अद्य नो निश्चयो जातः प्रजोत्पत्त्या विधानतः ॥ ४ ॥
बाधा नः सुव्यवस्थायां भवेन्नैव कदाचन ।
अज्ञासिष्म वयञ्चैतदिदानीं हे जगद्गुरो ! ॥ ५ ॥
किंविधे ज्ञानसम्पन्ने जीवपिंडे समुन्नते ।
स्याद्धर्म्मसार्वभौमात्मोदारमूर्त्तेर्हि दर्शनम् ॥ ६ ॥
वर्णाश्रमाणां धर्म्माणां महत्त्वं हृदयङ्गमम् ।
कीदृशाः प्राणिनः कर्त्तुं शक्नुयुस्तु समुन्नताः ॥ ७ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे सर्व्वेश्वर ! हे लोकपालक ! हे विश्वनाथ ! हे विभो ! हे दयासिन्धो ! आपकी कृपासे हमने धर्म्मका परम अद्भुत सर्व्वलोक-हितकर रहस्य, पिण्डोत्पत्ति विज्ञान और अहो ! वर्णाश्रमधर्म्ममूलक उसका नियामक उत्तम और गहन रहस्य सुना और अब हमें निश्चय हो गया है कि विधिपूर्व्वक प्रजाकी उत्पत्ति होनेसे कदापि हमारी सुव्यवस्थामें बाधा नहीं होगी। हे जगद्गुरो ! अब हमको यह भी विदित हो गया है कि धर्म्मकी सार्व्वभौम उदार मूर्तिका दर्शन किस प्रकारके उन्नत ज्ञानसम्पन्न जीवपिण्डमें हो सकता है ॥ २-६ ॥ और वर्णाश्रमधर्म्मका महत्त्व कैसे उन्नत जीव हृदयङ्गम

दिग्दर्शनञ्च धर्म्मस्य कारितं यद्दयावशात् ।
तेनावश्यं वयं शम्भो ! धर्म्मस्याभ्युदयाय वै ॥ ८ ॥
अलं कर्त्तुं हि मानव्याः सृष्टेः साहाय्यमद्भुतम् ।
प्राकृतायास्तथा दैव्याः सृष्टे सन्तः सहायकाः ॥ ९ ॥
सामाञ्जस्यं भवत्सृष्टिलीलाविस्तारगोचरम् ।
अवन्तस्ते प्रसादस्य हेतवः सम्भवेम च ॥ १० ॥
दैव्याः सृष्टेः समासेन श्रावयित्वा रहस्यकम् ।
अद्य नस्तर्पय ज्ञानपिपासां हे कृपानिधे ! ॥ ११ ॥
प्राकृताया समासाद्य सृष्टेरेव यथाक्रमम् ।
विकाशं मानवी सृष्टिर्जायते नात्र संशयः ॥ १२ ॥
उभयोरेतयोर्ज्ञानं सम्यगस्माकमस्त्यतः ।
अस्मल्लोकादतीतानां दैवानां नास्ति किन्त्वलम् ॥१३॥
स्वरूपं लोकवृन्दानां विदितं नः किमप्यहो ।
तद्बोधान्नः सदा दृष्टिः कैवल्याभ्युदयप्रदे ॥ १४ ॥

सक्ते हैं ॥ ७ ॥ आपने जो कृपा करके हमारे धर्म्मका दिग्दर्शन कराया है, हे शम्भो ! जिसके द्वारा हम अवश्य ही धर्म्माभ्युदयके लिये मानवी सृष्टिकी अद्भुत सहायता करनेमें समर्थ होंगे और साथही साथ प्राकृत सृष्टि और दैवी सृष्टिके सहायक बनकर आपकी सृष्टि-लीलाविस्तारसम्बन्धी सामञ्जस्य की रक्षा करते हुए आपकी प्रसन्नताका कारण हो सकेंगे ॥ ८-१० ॥ अब हे कृपानिधे ! दैवी-सृष्टिका संक्षेप रहस्य हमको सुनाकर हमारी ज्ञानपिपासाको तृप्त कीजिये ॥ ११ ॥ प्राकृत सृष्टिसे ही क्रमविकाश होकर मानवी सृष्टि उत्पन्न होती है इसमें सन्देह नहीं इस कारण इन दोनों सृष्टियोंका ज्ञान हमको अच्छी तरह है परन्तु हमारे लोकसे अतीत जो अन्यान्य दैव लोक हैं उनका स्वरूप अहो ! हमको कुछ भी विदित नहीं है,

गतिद्वयेऽवतिष्ठेत् सर्वथैव यथार्थतः ।
वयं शरणमापन्ना यथा स्याच्छं तथा कुरु ॥१५॥

सदाशिव उवाच ॥ १३ ॥

कल्याः ! स्थूलजगन्नूनं सूक्ष्मदैवजगद्धृतम् ।
सृष्टेरस्त्यधिभूतायाश्चालकं धारकं तथा ॥ १७ ॥
आधिदैविकराज्यं हि नास्ति कोऽप्यत्र संशयः ।
सत्यमेतन्न सन्देहः कर्त्तव्योऽत्र कदाचन ॥ १८ ॥
विनाऽधिदैवसाहाय्यं जगतो भवितुं क्षमाः ।
न स्थूलदृश्यमानस्य सृष्टिस्थितिलयक्रियाः ॥ १९ ॥
त्रिधा विभक्तं पितरः ! दैवं राज्यं हि वर्त्तते ।
आध्यात्मिकाधिदैवाधिभूतरूपं न संशयः ॥ २० ॥
आधिभौतिककार्य्यस्य यूयं विश्वस्य चालकाः ।
आध्यात्मिकक्रियायाश्च चालका ऋषयो ध्रुवम् ॥२१॥

उनका ज्ञान हम लोगोंको हो जानेसे अभ्युदय और निःश्रेयसकारिणी उभयगतिपर सब प्रकारसे ही हमारी दृष्टि यथार्थतः सदा रहेगी । हम आपके शरणागत हैं, जिससे कल्याण हो वैसा कीजिये ॥१२-१५॥

श्रीसदाशिव बोले ॥ १६ ॥

हे पितृगण ! स्थूलजगत् सूक्ष्म दैव जगत्के आधारपर ही स्थित है, अधिभूत सृष्टिका चालक और धारक अधिदैवराज्य ही है इसमें कुछ सन्देह नहीं है यह सत्य है इसमें कभी सन्देह न करना चाहिये ॥ १७-१८ ॥ विना अधिदैव सहायताके स्थूल परिदृश्यमान जगत्की न सृष्टि हो सकती है, न स्थिति हो सकती है और न लय हो सकता है ॥ १९ ॥ हे पितृगण ! दैवीराज्य अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपसे तीन भागोंमें ही निस्सन्देह विभक्त है ॥ २० ॥ जगत्की आधिभौतिक क्रियाके सञ्चालक आपलोग हैं जगत्की अध्यात्म-क्रियाके सञ्चालक ऋषिगण ही हैं और हे पितृगण ! जगत्की

अधिदैवक्रियायाः सञ्चालकाः सन्ति भूतिदाः ! ।
देवा नैके न सन्देहो नित्या नैमित्तिकास्तथा ॥२२॥
देवश्रेण्यो हि मे तिस्र एताः सन्ति विभूतयः ।
नातः स्याद्रक्षिता सृष्टिरासां साहाय्यमन्तरा ॥२३॥
देवानामेव किन्त्वस्ति नूनं शक्तिविचारतः ।
सर्वाधिकारतस्तेषामधिकारः समुन्नतः ॥ २४ ॥
अस्त्येतद्धि जगत्सर्वं पितरः ! कर्म्ममूलकम् ।
जड़त्वात्कर्म्मवर्गस्य तत्सञ्चालनकर्म्मणि ॥ २५ ॥
आवश्यकत्वाद्देवानाँ तत्प्राधान्यं परं स्मृतम् ! ।
नैवात्र संशयः कार्य्यो विस्मयो वा कदाचन ॥ २६ ॥
अहं चतुर्दशानां हि भुवनानां स्वधाभुजः ! ।
पञ्चानाञ्चैव कोषाणां सम्बन्धादद्य वो ब्रुवे ॥२७॥
प्राधान्यं देववृन्दस्य श्रूयतां सुसमाहितैः ।
दैवसृष्टिरहस्यं स्याज्ज्ञातं येन यथार्थतः ॥ २८ ॥

अधिदैव क्रियाके सञ्चालक अनेक नित्य और नैमित्तिक देवतागण ही हैं ॥ २१-२२ ये तीनोंही देवश्रेणी मेरी विभूति हैं, इस कारण इन तीनों ही की सहायता बिना सृष्टिकी रक्षा नहीं हो सकती ॥ २३ ॥ परन्तु शक्तिके विचारसे देवतागणका अधिकार ही सब अधिकारोंसे उन्नत है ॥ २४ ॥ हे पितृगण ! यह सम्पूर्ण जगत् कर्म्म-मूलक है, कर्म्मोंके जड़ होनेसे कर्म्म केसञ्चालनमें देवताओंकी आवश्यकता रहनेसे देवताओंकी परम प्रधानता मानी गई है, इसमें सन्देह या विस्मय कभी नहीं ही करना चाहिये ॥ २५-२६ ॥ हे पितृगण ! अब मैं चतुर्दश भुवन और पञ्चकोषके सम्बन्धसे देवताओंकी प्रधानता आपको कहता हूँ ध्यान देकर सुनो जिससे आपको दैवी सृष्टिका यथार्थ रहस्य विदित हो जायगा ॥ २७-२८ ॥

ब्रह्मविष्णुमहेशाख्यं त्रिमूर्त्ति त्रिगुणात्मकम् ।
यदाऽहं पितरो धृत्वा स्वशक्तेरवलम्बनात् ॥ २९ ॥
आददे सगुणं रूपं तिस्रस्ता एव मूर्त्तयः ।
प्राधान्यं सर्वदेवेषु धरन्त्योऽलं भवन्ति ते ॥ ३० ॥
ब्रह्माण्डे किल प्रत्येकं मुख्या देवा न संशयः ।
आवहन्तस्त्रिदेवाख्यां प्राशस्त्यं यान्ति सर्वथा ॥३१॥
अस्य मूर्त्तित्रयस्यास्ते प्रतिब्रह्माण्डवर्त्तिनः ।
नैव भेदो मया सार्द्धं वस्तुतः कश्चिदप्यणुः ॥ ३२ ॥
एतदेवाधिदैवं हि मुख्यं मूर्त्तित्रयं मम ।
प्रोच्यते पितरो विज्ञैः प्रतिब्रह्माण्डमीश्वरः ॥३३॥
ब्रह्मण्डेध्यात्मशक्तिर्मे ह्याधिदैव्यापि भाति वै ।
लोकस्रष्टत्वतो वोऽयं नायकोऽस्ति तथाप्यहो ॥३४॥
तथा शिवेऽधिभूतायामाधिदैव्याश्च पूर्णतः ।
शक्तौ विकाशितायां हि सत्यामपि स्वधाभुजः ! ॥३५॥

हे पितृगण ! जब मैं ब्रह्मा विष्णु और महेशरूपी त्रिगुणात्मक त्रिमू-र्त्तिको धारण करके अपनी शक्तिकी सहायतासे सगुण होता हूँ तो वही मेरी त्रिमूर्त्ति सर्व्वदेवप्रधान होकर प्रत्येक ब्रह्माण्डमें निस्सन्देह प्रधान देवता कहाते हैं और त्रिदेव नामको धारण करके सर्वथा प्रसिद्ध होते हैं ॥ २९–३१ ॥ वास्तवमें प्रत्येक ब्रह्माण्डके इन त्रिमूर्तियों में और मुझमें कोई भी भेद नहीं है ॥ ३२ ॥ हे पितृगण ! ये तीनों प्रधान अधिदैव मूर्ति ही प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ईश्वर कहाते हैं ॥ ३३ ॥ ब्रम्हाजीमें मेरी अध्यात्मशक्ति अधिदैवशक्तिका पूर्ण विकाश रहनेपर भी वे लोकस्रष्टा होनेके कारण आपलोगोंके नायक कहाते हैं ॥ ३४ ॥ उसी प्रकार हे पितृगण ! शिवमें अधिभूतशक्ति और अधि-दैवशक्तिका पूर्ण विकाश रहने पर भी वे ज्ञानदाता होनेके कारण

नायको ज्ञानदातृत्वादृषीणामेष मन्यते।
संविकाशितयोः शक्त्योः पूर्णाऽध्यात्माधिभूतयोः ॥३६॥
विष्णौ सत्योस्तथाप्येष वर्त्तते देवनायकः।
दैवशक्तिकदम्बस्य केन्द्रीभूतो यतोऽस्त्ययम् ॥ ३७ ॥
पितरः! वोऽधिकारोऽस्ति स्थूले जगति केवलम्।
पिण्डपुञ्जेऽपि मर्त्यानां पिण्डेष्वेव विशेषतः ॥ ३८ ॥
केवलं ज्ञानिजीवेषु त्वधिकारस्तथास्त्यलम्।
ऋषीणां नात्र सन्देहः किन्तु देवगणस्य वै ॥ ३९ ॥
ब्रह्माण्डानां हि सर्व्वेषां भागेष्वास्तेऽखिलेषु च।
अधिकारोऽस्त्यतस्तेषां देवानां सर्वमान्यता ॥ ४० ॥
पितरः! पञ्चकोषाश्च भुवनानि चतुर्दश।
समष्टिव्यष्टिरूपायां पिंडब्रह्मांडसंहतौ ॥ ४१ ॥
ओतप्रोतस्वरूपेण सन्तिष्ठन्ते न संशयः।
मम ब्रह्मांडरूपस्य विराड्देहस्य कल्यदाः! ॥ ४२ ॥
लोकाः सप्तोर्द्ध्वगा नाभिमुपर्य्युपरि सन्त्यहो।
अधोऽधः सप्त वर्त्तन्ते ध्रुवं नाभिश्च संस्थिताः ॥४३॥

ऋषियोंके नायक माने जाते हैं। और उसी प्रकार विष्णुमें अधिभूत-शक्ति और अध्यात्मिशक्तिका पूर्ण विकाश रहने पर भी वे दैवी-शक्तिसमूहके केन्द्र होनेसे देवताओंके नायक हैं॥ ३५-३७॥ हे पितृगण! आपलोगोंका अधिक्रार केवल स्थूल जगत् और पिण्डोंमें मनुष्यपिण्डों पर ही विशेषरूपसे है॥३८॥ ऋषियोंका अधिकार केवल ज्ञानी जीवोंमें ही है इसमें सन्देह नहीं परन्तु देवताओंका अधिकार प्रत्येक ब्रम्हाण्डके सब विभागों पर होनेसे वे सर्व्वमान्य हैं॥३९-४०॥ हे पितृगण! पञ्चकोश और चतुर्दश भुवन समष्टि और व्यष्टिरूप ब्रम्हाण्ड और पिण्डसमूहमें निस्सन्देह ओत प्रोत हैं। ब्रम्हाण्ड-रूपी मेरे विराट् शरीरके नाभिसे ऊपर सात ऊर्द्धलोक और नाभिसे

अतः समष्टिरूपेऽस्मिन् ब्रह्माण्डे वै चतुर्दश ।
भुवनानि प्रधानानि विद्यन्ते नात्र संशयः ॥४४॥
पञ्चकोषास्तु तिष्ठन्ति व्याप्ता गौणतयाऽत्र हि ।
जीवदेहस्वरूपेषु कोषाः पिंडेषु पञ्च च ॥ ४५ ॥
प्रधानास्सन्ति तेषां हि सम्बन्धाच्च चतुर्दश ।
भुवनान्यप्रधानानि सन्तिष्ठन्ते निरन्तरम् ॥ ४६ ॥
अतो मे ज्ञानिनो भक्ता ऐशीं शक्तिं समाश्रिताः ।
स्वपिंडेष्वपि तिष्ठन्तः सूक्ष्मैर्नानाविधैर्द्रुतम् ॥ ४७ ॥
संस्थापयितुमर्हन्ति देवलोकैः सहान्वयम् ।
अन्यान्यसूक्ष्मलोकेषु निवसन्तोऽप्यतस्तथा ॥ ४८ ॥
संस्थापयितुमर्हन्ति स्वाधिपत्यं स्वधाभुजः ! ।
देवासुरगणाः सर्वे जीवपिंडेष्वनुक्षणम् ॥ ४९ ॥
पितरः ! पञ्चकोषा हि सर्वपिंडप्रतिष्ठिताः ।
आवृण्वन्तो विराजन्ते मत्स्वरूपं न संशयः ॥ ५० ॥

नीचे सात अधोलोक स्थित हैं ॥ ४१-४३ ॥ इस कारण समष्टिरूपी ब्रह्माण्डमें चतुर्दश भुवन प्रधान हैं और पञ्चकोष उनमें गौणरूपसे व्याप्त रहते हैं । उसी प्रकार जीवदेहरूपी पिण्डमें पञ्चकोश प्रधान और उन पञ्चकोषोंके सम्बन्धसे चतुर्द्दश भुवनोंका सम्बन्ध अप्रधान रहता है ॥ ४४--४६ ॥ यही कारण है कि मेरी ऐशी शक्ति प्राप्त करनेसे मेरा ज्ञानीभक्त अपने पिण्डमें रहकर भी नाना सूक्ष्म दैवीलोकोंके साथ सम्बन्ध स्थापन कर सकता है और इसी कारण हे पितरों ! देवतागण अथवा असुरगण भी अन्यान्य सूक्ष्मलोकोंमें रहने पर भी जीवपिण्डों पर अपना अधिकार स्थापन सर्व्वदा कर सकते हैं ॥४९-४९॥ हे पितृगण ! पञ्चकोष सव प्रकारके पिण्डोंमें प्रतिष्ठित होकर मेरे स्वरूपको आवरण किये हुए रहते हैं ॥ ५० ॥

मध्यमासु निकृष्टासु तथोच्चैर्देवयोनिषु ।
सर्वास्वप्यवतिष्ठन्ते पञ्चकोषा न संशयः ॥ ५१ ॥
एतावांस्तत्र भेदोऽस्ति नूनं निम्नासु योनिषु ।
पञ्चकोषा विकाशन्ते नैव सामान्यतोऽखिलाः ॥ ५२ ॥
निखिलानान्तु कोषाणां मर्त्यपिण्डेषु निश्चितम् ।
विकाशः सर्वतः सम्यग्जायते नात्र संशयः ॥ ५३ ॥
ततोऽपि देवपिंडेषु विकाशन्ते हि शक्तयः ।
अधिकं खलु पञ्चानां कोषाणां नात्र संशयः ॥ ५४ ॥
पाञ्चकौषिकभूमीनां समानानां स्वभावतः ।
सम्बन्धः सर्वपिंडानां भूमिभिः सह वर्त्तते ॥ ५५ ॥
ऋषयोऽतो भवन्तश्च ममोपासकयोगिनः ।
देवाः शक्तिविशेषैश्च विधातुं शक्नुवन्त्यलम् ॥ ५६ ॥
कार्य्यं कोषविशेषस्य पिण्डेष्वन्येषु चैकतः ।
नैवात्र संशयः कश्चित्सत्यं जानीत सत्तमाः ! ॥ ५७ ॥

चाहे निकृष्टयोनि हो, चाहे मध्यम मनुष्ययोनि हो और चाहे उन्नत देवयोनि हो सबमें अवश्य ही पञ्चकोष विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ भेद इतना ही है कि निकृष्ट योनियोंमें सब कोषोंका समान विकाश नहीं होता । मनुष्यपिण्डमें सब कोषोंका सम्यक् विकाश हो जाता है और देवपिण्डमें उसके अतिरिक्त पञ्चकोषकी शक्तियोंका अधिक विकाश हो जाता है ॥ ५२--५४ ॥ परन्तु पञ्चकोषकी समान भूमिका सम्बन्ध सब पिण्डोंके पञ्चकोषोंकी भूमियोंके साथ स्वाभाविकरूपसे बने रहनेसे मेरे उपासक योगिगण, आपलोग, ऋषिगण अथवा देवतागण विशेष विशेष कोषका कार्य विशेष विशेष शक्तिके द्वारा एक पिण्डसे दूसरे पिण्डमें कर सकते हैं, इसकों निः-

वसन्ति देवाः पितरः ! ऊर्द्ध्वलोकेषु सप्तसु ।
सन्तिष्ठन्तेऽसुराः सर्वे ह्यधोलोके सप्तसु ॥ ५८ ॥
तमोमुख्यतया सृष्टेरसुराणां हि सप्तमे ।
लोकेऽस्त्यसुरराजस्य राजधानी त्वधस्तने ॥ ५९ ॥
दैव्याः सत्त्वप्रधानत्वात्सृष्टे राजानुशासनम् ।
उच्चैर्दैवेषु लोकेषु नैवावश्यकमस्त्यहो ॥ ६० ॥
अस्त्यतो देवराजस्य राजधानी तृतीयके ।
उर्द्धवलोके स्थिता नित्यं नात्र कार्य्या विचारणा ॥६१॥
विशेषतोऽसुराः सर्व सदा प्राबल्यसञ्जुषः ।
कुर्वाणा विप्लवं दैवे राज्ये सृष्टेः प्रबाधितुम् ॥ ६२ ॥
सामञ्जस्यं विचेष्टन्ते नितान्तं सन्ततं बहु ।
अतोऽपि देवराजस्य राजधानी तृतायके ॥ ६३ ॥
ऊर्द्धवलोके स्थिता नित्य विद्यते पितरो ध्रुवम् ।
उन्नतेषूर्द्धवलोकेषु प्रवेशोऽप्यस्त्यसम्भवः ॥ ६४ ॥

संशय सत्य जानें ॥ ५५-५७ ॥ हे पितृगण ! उर्द्ध सप्तलोकोंमें देवताओंका वास है और अधः सप्लोकोंमें असुरोंका वास है ॥ ५८ ॥ असुरगणकी सृष्टि तमःप्रधान होनेसे असुरराजकी राजधानी सप्तम अधोलोकमें स्थित है परन्तु दैवी सृष्टि सत्त्वप्रधान होनेके कारण और उन्नत दैवलोकोंमें राजानुशासनकी आवश्यकता न रहनेसे देवराजकी राजधानी तृतीय ऊर्द्धलोकमें स्थित है। इसमें कोई विचारकी बात नहीं है ॥ ५९-६१ ॥ विशेषतः हे पितृगण ! असुरगण सदा प्रबलता लाभ करके दैवी राज्यमें विप्लव करके सृष्टिसामञ्जस्यमें बाधा डालनेमें सचेष्ट रहते हैं इस कारणसे भी देवराजकी राजधानी सदा तृतीया ऊर्द्धलोकमें ही स्थित रहती है। हे पितृगण ! उन्नत ऊर्द्धलोकोंमें असुरोंका प्रवेश भी सम्भव नहीं है

असुराणामतोऽप्येषु देवराजानुशासनम् ।
नावश्यकत्वमाप्नोति विशेषेण कदाचन ॥ ६५ ॥
विभिन्नोपासकेभ्यो हि स्वरूपं सगुणं धरन् ।
सालोक्यञ्चैव सामीप्यं सारूप्यं पितरस्तथा ॥ ६६ ॥
दातुं मोक्षञ्च सायुज्यं नानारूपैर्हि सप्तमे ।
ऊर्द्ध्वलोके तथा षष्ठे विराजेऽहमनुक्षणम् ॥ ६७ ॥
उन्नतेषूर्द्ध्वलोकेषु सात्त्विकेषु स्वधाभुजः !
राजानुशासनस्यातः का वार्त्ता वर्त्तते खलु ॥ ६८ ॥
शब्दानुशासनस्यापि नास्ति तेषु प्रयोजनम् ।
विचित्रो मध्यवर्त्यास्ति मृत्युलोको विभूतिदा ॥ ६९ ॥
यथा गार्हस्थ्यमाश्रित्य पुष्टाः स्युः सर्व आश्रमा ।
मृत्युलोकं समाश्रित्य भुवनानि चतुर्दश ॥ ७० ॥
स्वातन्त्र्यं पूर्णमत्रास्ति कर्म्मसम्पादने यतः ।
मृत्युलोकप्रतिष्ठाऽतो विद्यते निखिलोपरि ॥ ७१ ॥
यद्यप्युत्पद्यते मोक्षफलमुद्यान उत्तमे ।

इस कारणसे भी वहां देवराजके राजानुशासनकी विशेष आवश्यकता नहीं रहती है ॥ ६२-६५ ॥ हे पितृगण ! मैं सगुणरूपको धारण करके विभिन्न उपासकोंको सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य मुक्ति प्रदानके लिये नानारूपसे षष्ठ और सप्तम ऊर्द्ध्वलोकमें सदा विराजमान रहता हूं । इस कारण उन उन्नत लोकसमूहमें राजानुशासनकी तो बात ही क्या है शब्दानुशासनका भी वहां अधिकार नहीं है। हे पितृगण ! मध्यवर्त्ती मृत्युलोक अति विचित्र है। जिस प्रकार गृहस्थाश्रम सब आश्रमोंका पोषक है उसी प्रकार मृत्युलोक ही चतुर्दश भुवनोंका पोषक है॥ ६६-७० ॥ क्योंकि मृत्युलोकमें कर्म्म करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता होनेके कारण उसकी प्रतिष्ठा सर्व्वोपरि है ॥७१॥ मोक्षरूपी फलकी उत्पत्ति मृत्यु-

मृत्युलोके न सन्देहस्तद्बीजं किन्तु लभ्यते ॥ ७२ ॥
आर्य्यावर्त्तप्रदेशे हि कर्म्मभूमिस्वरूपिणि ।
विशुद्धे याज्ञिके रम्ये सर्वर्तुव्रातशोभिते ॥ ७३ ॥
का वार्त्ताऽतोऽस्ति देवानामवतारीयविग्रहम् ।
आविर्भवितुमिच्छाम्यप्यार्य्यावर्त्तेऽहमाश्रयन् ॥ ७४ ॥
मृत्युलोकस्य भूलोकान्तर्गतस्यास्ति विस्तृतिः ।
महती नात्र सन्देहस्तद्विभागश्चतुर्विधः ॥ ७५ ॥
एको वः पितृलोकोऽस्ति मृत्युलोको द्वितीयकः ।
प्रेतलोकस्तृतीयोऽस्ति चतुर्थो नरकाभिधः ॥ ७६ ॥
भूलोके भवतामेव लोकः स्वर्गः सुखप्रदः ।
वस्तुतो नात्र सन्देहो विधातव्यः स्वधाभुजः ! ॥ ७७ ॥
कर्म्मभूमृत्युलोकोऽस्ति कर्म्मक्षेत्रञ्च यं जगुः ।
प्रेतलोकस्तथैव स्तो लोकोऽपि नरकाभिधः ॥ ७८ ॥
दुःखदावानलज्वालापूरितौ भीषणावलम् ।
प्रेतलोकोऽस्ति संश्लिष्टो मृत्युलोकेन सर्वथा ॥ ७९ ॥

लोकरूपी उद्यानमें होनेपर भी उसका बीज विशुद्ध याज्ञिक सब ऋतुओंसे सुशोभित कर्म्मभूमि अर्य्यावर्तमें सदा प्राप्त होता है इस कारण देवतागणकी तो बातही क्या है मैं भी अवतारविग्रह को धारण करके आर्य्यावर्त्तमें आविर्भूत होनेकी इच्छा रखता हूँ ॥ ७२-७४ ॥ हे पितृगण ! मृत्युलोक भूलोकके अर्न्तगत होनेपर भी भूलोकका विस्तार अधिक है। भूलोकके चार विभाग हैं, यथा- आपलोगोंका पितृलोक, मृत्युलोक, प्रेतलोक और नरकलोक ॥ ७५-७६ ॥ वस्तुतः हे पितृगण ! आपलोगोंका लोकही भूलोकमें सुख-प्रद स्वर्गलोक है ॥ ७७ ॥ मृत्युलोक कर्म्मभूमि है जिसको कर्म्म-क्षेत्र कहते हैं और प्रेतलोक और नरकलोक घोर दुःख--दावानलसे पूर्णलोक हैं। वस्तुतस्तु प्रेतलोक तो मृत्युलोकसे ही सर्वथा संश्लिष्ट

भुवर्लोकादयोऽन्ये वो लोकादूर्द्ध्वमवस्थिताः ।
अस्त्यतश्चोर्द्ध्वलोकानामधोलोकव्रजस्य च ॥ ८० ॥
वैलक्षण्येन सार्द्धं वः सम्यक् परिचयो न हि ।
यद्यप्यस्याश्चतुर्लोक्यां धर्म्मराजानुशासनम् ॥ ८१ ॥
वरीवर्त्त्येव विस्तीर्णं नास्ति कोऽप्यत्र संशयः ।
दृढं कुर्य्यात चेदयत्नं पितरो यूयमन्वहम् ॥ ८२ ॥
यमदण्डस्य साहाय्यमन्तरेणैव तद्ध्रुवम् ।
कृतार्था भवितुं सृष्टेः सामञ्जस्यस्य रक्षणे ॥ ८३ ॥
दण्डेनैव प्रजाः सर्वाः कर्त्तुं धर्म्मपरायणाः ।
यत्नो यद्यपि वर्त्तेत निस्सन्देहं शुभावहः ॥ ८४ ॥
किन्त्वहो येन यत्नेन प्रजाः सर्वाः कदाचन ।
दण्डार्हा एव नैव स्युः स यत्नो ज्ञानिसन्निधौ ॥८५॥
प्रजाकल्याणवृद्ध्यर्थमधिकं स्यात्सुखप्रदः ।
नास्ति कोऽप्यत्र सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥८६॥

है ॥ ७८-७९ ॥ हे पितृगण ! भुवर्लोक आदि अन्यलोक आपके लोकसे परे स्थित हैं इसी कारण उन ऊर्द्धलोकों तथा अधोलोकोंके वैचित्र्यके साथ आपलोगोंका विशेषरूपसे परिचय नहीं है। हे पितृगण ! यद्यपि धर्म्मराजका अनुशासन इन चारों लोकोंमें विस्तृत है। परन्तु आपलोग यदि दृढ़ प्रयत्न करें तो बिना यमदण्डकी सहायता लिये ही सृष्टिके सामञ्जस्यकी सुरक्षामें कृतकार्य्य हो सकते हैं ॥ ८०-८३ ॥ दण्डके द्वारा प्रजाको धार्म्मिक बनानेका प्रयत्न तो शुभ ही है इसमें सन्देह नहीं तथापि यदि ऐसा प्रयत्न हो कि प्रजा, दण्डार्ह बनेही नहीं तो ऐसा प्रयत्न प्रजा कल्याणके लिये दण्डकी अपेक्षा अधिक कल्याणप्रद ज्ञानियोंके निकट समझा जाता है ! इसमें कोई सन्देह नहीं है आपलोगोंसे

मृत्युलोकाधिकारोऽस्ति सर्वलोकहितप्रदः ।
यतो देवासुरैः सर्व्वैः पितरः ! कर्म्मभूमितः ॥ ८७ ॥
मानवाल्लोकतो गत्वा प्राप्यन्ते चोक्तयोनयः ।
भोगावसानजे जाते पाते तेषां स्वलोकतः ॥ ८८ ॥

भूयोऽप्यभ्युदयं प्राप्तुं मृत्युलोकोऽयमेव वै ।
भवेदाश्रयणीयो हि सर्वथैव न संशयः ॥ ८९ ॥

अस्त्यङ्गं प्रेतलोकस्तु मृत्युलोकस्य निश्चितम् ।
मृत्युलोकेन सम्बद्धौ लोको च द्विविधौ परौ ॥ ९० ॥
ऊर्द्ध्वाधःसंस्थितौ पितृनरकाख्यौ यथाक्रमम् ।
आश्रये मृत्युलोकस्य संस्थितौ नात्र संशय ॥ ९१ ॥

आसाते खलु तौ यस्माद्भोगलोकावुभावपि ।
मृत्युलोकव्यवस्थातो जायन्तेऽन्तः स्वधाभुजः ॥ ९२ ॥
स्वतो व्यवस्थितानीह भुवनानि चतुर्दश ।
पूर्णधर्म्मस्वरूपस्य विकाशेन निरन्तरम् ॥ ९३ ॥

सत्य कहता हूँ ॥ ८४-८६ ॥ हे पितृगण ! मृत्युलोकका अधिकार सर्व्वलोकहितकर है क्योंकि देवता और असुर सब ही कर्म्मभूमि मनुष्यलोकसे ही जाकर उक्त योनियोंको प्राप्त करते हैं । और उनके भोगावसानसे पतन होने पर पुनः उनको अभ्युदय प्राप्तिके लिए मनुष्यलोकका ही सर्वथा आश्रय ग्रहण करना पड़ता है ॥ ८७-८९ ॥ प्रेतलोक तो मृत्युलोकका अङ्गरूप ही है और मृत्युलोकसे सम्बन्धयुक्त अन्य दोनों अधः ऊर्द्धलोक जो यथाक्रम नरकलोक और पितृलोक नामसे अभिहित होते हैं वे सब मृत्युलोकके आधार पर स्थित है क्योंकि वे सब भोगलोक ही हैं । इसकारण हे पितृगण ! मृत्युलोककी सुव्यवस्था होनेसे चतुर्द्दश भुवनोंकी सुव्यवस्था स्वतः ही हुआ करती है और धर्म्मके पूर्ण स्वरूपके

आत्मज्ञानप्रकाशस्य सहजं स्थानमुत्तमम्।
नन्वार्य्यावर्त्त एवास्ते कर्म्मभूमिर्न संशयः॥ ९४॥
पितरः! साम्प्रतं वच्मि वैदिकं सारमत्र वः।
सावधानैर्भवद्भिश्च श्रूयतां स शुभावहः॥ ९५॥
वर्णाश्रमाणां धर्म्माणां भवेद्बीजं सुरक्षितम्।
पित्रोर्धार्म्मिकयोर्नूनं शुद्ध्याशोणितशुक्रयोः॥ ९६॥
धर्म्मैर्वर्णाश्रमैः सम्यक् पीठशुद्धिः स्वतो भवेत।
पीठशुद्ध्या स्वतश्चक्रशुद्धिकार्य्यञ्च सिध्यति॥ ९७॥
यावती चक्रशुद्धि स्यात्तावती वः प्रसन्नता।
प्रसीदन्ति प्रसादेन देवा वोऽभ्युदयं गताः॥ ९८॥
देवप्रसादमासाद्य जनाः प्रारब्धशालिनः।
ऋषिप्रसन्नतां लब्ध्वा भवेयुर्ह्यात्मवेदिनः॥ ९९॥
पूर्णं धर्म्मस्वरूपं हि शान्ते चित्ते प्रकाशते।
योगिनां मम भक्तानामात्मज्ञानां महात्मनाम्॥१००॥

विकाशके द्वारा आत्मज्ञानका प्रकाश होनेका सहज स्थान तो कर्म्मभूमि आर्य्यावर्त ही हैं॥ ९०-९४॥ हे पितृगण! अब इस विषयमें आपको वेदका सार मैं कहता हूँ सावधान होकर सुनो॥ ९५॥ धर्म्मपरायण माता पिताके रज वीर्य्यकी शुद्धिके द्वारा वर्णाश्रमधर्म्मकी बीजरक्षा होती है। वर्णाश्रमधर्म्मके द्वारा पीठशुद्धि स्वतः ही प्राप्त होती है और पीठशुद्धिद्वारा चक्रशुद्धिका कार्य्य स्वतः ही सम्पादित हो जाता है॥ ९६-९७॥ जितनी चक्रशुद्धि होती है उतने ही आपलोग प्रसन्न होते हैं, आपकी प्रसन्नतासे देवतागण अभ्युदयको प्राप्त होकर प्रसन्न होते हैं॥ ९८॥ दैवी प्रसन्ता प्राप्त करते हुए अन्तमें प्रारब्धशाली मनुष्य ऋषियोंकी प्रसन्नता प्राप्त करके आत्मज्ञानी बन जाते हैं॥ ९९॥ और मेरे भक्त योगिराज आत्मज्ञानी महापुरुषके शान्त हृदयमें ही धर्म्मका पूर्ण स्वरूप प्रकट

यस्यां मनुष्यजातौ स्यात्पित्रोः पूजा यथार्थतः ।
ऋषीणां देवतानाञ्चावताराणां यथायथम् ॥ १०१ ॥
मद्विभूत्यवताराणां स्यादाराधनमप्यलम् ।
यत्र सप्तविधानाञ्च वृद्धानाममलात्मनाम् ॥ १०२ ॥
पूजा स्यात्सन्ततं सम्यक् सत्कारेण समन्विता ।
स्वयं संवर्द्धिता जातिरसौ संवर्द्धयेद्धि वः ॥ १०३ ॥
मिथः संवर्द्धनेनैवं स्याच्छ्रेयः परमं हितम् ।
प्रसीदन्ति भवन्तो हि मर्त्यजातौ तु यत्र वै ॥ १०४ ॥
सैव स्वास्थ्यं तथा वीर्य्यं सदाचारं पवित्रताम् ।
लभते नात्र सन्देहस्तूर्णं पूर्णं सुखं ध्रुवम् ॥ १०५ ॥
यस्यां जातौ गुणाः स्वच्छा उत्पद्यन्तेऽखिला अमी ।
दैवानुकूल्यमाप्नोति सा जातिः शाश्वतीः समाः ॥१०६
दैवानुकूल्यतो विद्यावलबुद्धिधनात्मिका ।
नूनमासाद्यते शीघ्रं मम शक्तिश्चतुर्विधा ॥ १०७ ॥

होता है ॥ १०० ॥ हे पितृगण ! जिस मनुष्यजातिमें मातापिताकी यथार्थ पूजा प्रचलित है, जिस जातिमें ऋषि और देवताओंके अवतारों तथा मेरी विभूति और अवतारोंकी यथायोग्य आराधना होती है और जिस मनुष्यजातिमें सप्त प्रकारके वृद्धोंकी नित्य सम्यक् पूजा होती है वह जाति स्वयं भी संवर्द्धित होकर आप लोगोंको संवर्द्धित करती है ॥ १०१-१०३ ॥ और इसीप्रकार परस्पर संवर्द्धनद्वारा परम श्रेय उत्पन्न होता है। जिस मनुष्यजाति पर आपलोग प्रसन्न होते हो वह जाति अवश्य ही शीघ्र स्वास्थ्य, वीर्य्य, पवित्रता और आचारको लाभ करती है ॥ १०४–१०५ ॥ और जिस जातिमें ये सब उत्तम गुण उत्पन्न होते हैं वह वहुत दिनों तक दैवानुकूल्य प्राप्त करती है ॥१०६॥ दैवानुकूल्यसे शीघ्र ही बल, बुद्धि, विद्या और धनरूपी चतुर्विधा मेंरी शक्तिकी प्राप्ति होती है ॥ १०७ ॥ इन

मच्चतुःशक्तिलाभेन नन्वात्मज्ञानमूलिका ।
स्वाधीना प्रतिभोदेति नात्र कश्चन संशयः ॥१०८॥
स्वाधीना प्रतिभा जातिं किलात्मज्ञानमूलिका ।
परमोदारधर्म्मस्य पूर्णं ज्ञानं नयत्यलम् ॥ १०९ ॥
मत्प्राप्तेः कारणत्वञ्च सर्वाङ्गैः परिपूरितः ।
वहते नात्र सन्देहो धर्म्म एव सनातनः ॥ ११० ॥
शाश्वतस्याहमेवास्मि सर्वलोकहितस्य हि ।
आत्मज्ञानप्रसादस्य दातुर्धर्म्मस्य निश्चितम् ॥ १११ ॥
सर्वदा पितरो विज्ञाः ! प्रतिष्ठास्थानमुत्तमम् ।
नैवात्र संशयः कार्य्यो विस्मयो वा कदाचन ॥११२॥
अत्रैकोपनिषद्रहस्यमन्तिके वः स्वधाभुजः ! ।
गुह्यं प्रकाशयेऽत्यन्तमद्भुतं तत्प्रपश्यत ॥११३॥
श्यामायाः प्रकृतेर्मे स्तो द्वे रूपे परमाद्भुते ।
यतः सैव जड़ा जीवभूता चैतन्यमय्यपि ॥ ११४ ॥
अज्ञानपूर्णरूपेण जड़रूपं धरन्त्यसौ ।
सृष्टिं प्रकाशयेच्छश्वन्नात्र कश्चन संशयः ॥ ११५ ॥

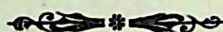
चतुःशक्तियों के प्राप्त करनेसे आत्मज्ञानमूलक स्वाधीन प्रतिभासे जातिमें परमोदार धर्म्मके पूर्णज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ १०९॥ और सर्व्वाङ्गोंसे पूर्ण सनातत धर्म्मही मुझको प्राप्त करानेका का कारण बनता है ॥ ११० ॥ क्योंकि हे विज्ञ पितृगण ! मैं ही शाश्वत और सर्व्वलोकहितकर तथा आत्मज्ञानके दातृरूपी धर्म्मके प्रतिष्ठाका स्थान हूँ । इसमें सन्देह या विस्मय न करना चाहिये ॥१११-११२॥ हे पितृगण ! इस सम्बन्धसे मैं उपनिषद्का एक अद्भुत रहस्यपूर्ण दृश्य आपके सामने प्रकट करता हूँ, देखो ॥११३॥ मेंरी श्यामा प्रकृति के दो रूप हैं, वही जड़रूपा है और वही जीवभूता चेतनमयी है। वह अज्ञानपूर्ण रूपमें जड़रूप धारण करके सदा सृष्टिको प्रकट करती

असौ चैतन्यपूर्णा च भूत्वा स्रोतस्विनीमम ।
स्वस्वरूपात्मके नित्यं पारावारे विशत्यहो ॥ ११६ ॥
सरिन्निर्गत्य चिद्रूपा सा महाद्रेर्जडात्मकात् ।
उद्भिज्जे स्वेदजे चैवमण्डजे च जरायुजे ॥ ११७ ॥
सलीलं खातरूपेऽलं प्रवहन्ती स्वधाभुजः ! ।
मर्त्यलोकाधित्यकायां निर्बाधं व्रजति स्वयम् ॥११८॥
तस्या अधित्यकाया हि निम्नस्थाश्चैकपार्श्वतः ।
उपत्यका महत्यश्च विद्यन्ते गह्वरादयः ॥ ११९ ॥
यत्र तस्याः पवित्रायास्तरङ्गिण्या जलं स्वतः ।
स्थाने स्थाने वहन्नित्यं निर्गच्छति स्वभावतः ॥१२०॥
अव्याहतञ्च नीरन्ध्रमविच्छिन्नं निरापदम् ।
स्रोतस्तन्नितरां कृत्वा नदीधारां धरातले ॥१२१॥
विधातुं सरलां सौम्यामष्ट बन्धाः स्वधाभुजः ! ।
धर्म्मा वर्णाश्रमा एव निर्मिता नात्र संशयः ॥१२२॥
त्रिलोकपावनी दिव्या सा नदी सुगमं हितम् ।
पन्थानमवलम्ब्यैव परमानन्दलब्धये ॥ १२३ ॥

है और चेतनमयी स्रोतस्विनी होकर मेरे स्वस्वरूप-पारावारमें प्रवेश करती है ॥ ११४-११६ ॥ वह चिन्मयीनदी जड़मय महापर्व्वतसे निकलकर प्रथम उद्भिज्ज, तदनन्तर स्वेदज, तदनन्तर अण्डज, तदनन्तर जरायुज नामधारी खादमें सरलतासे बहती हुई मनुष्य-लोकरूपी अधित्यकामें पहुंचती हैं ॥ ११७ ११८ ॥ उस अधित्यकाके नीचे महती उपत्यकाएं और गह्वर आदि विद्यमान हैं ॥ ११९ ॥ जिनमें उस पवित्र तरङ्गिणी का जल स्थान स्थान पर स्वतः ही वह जाया जाया करता है ॥१२०॥ हे पितृगण उस स्रोतको अप्रतिहत, नीरन्ध्र और अविच्छिन्न रखकर नदीकी धाराको धरातल पर सरल रखनेके लिये वर्ण और आश्रमके आठ वन्ध रक्खे गये हैं । इसी कारण वह अलौकिक त्रिलोक पावनी नदी सरल पथको अवलम्बन

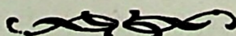
मयि नित्यं प्रकुर्वाणा प्रवेशं राजतेतराम् ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ! ॥१२४॥
निर्ज्जरा निखिलास्तस्यां नद्यामानन्दपूर्वकम् ।
सर्वदैवावगाहन्ते लभन्तेऽभ्युदयञ्च ते ॥ १२५ ॥
उभयोस्तटयोः तस्याः समासीना महर्षयः ।
ब्रह्मध्याने सदा मग्ना यान्ति निःश्रेयसं पदम् ॥१२६॥
यूयं दार्ढ्याय बन्धानां तेषाञ्चैव निरन्तरम् ।
रक्षितुं तान् प्रवर्त्तन्ते पार्श्वमेषामुपस्थिताः ॥ १२७॥
भवतामत्र कार्य्ये च विश्वमङ्गलकारके ।
सदाचारिद्विजाः सन्ति सत्यो नार्य्यः सहायिकाः॥१२८॥

इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे सदाशिवपितृसंवादे दैवलोक-
निरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।



करके मुझमें परमानन्द-प्राप्तिके हेतु प्रवेश करती है । हे पितृगण ! इसमें आपलोग विस्मित न होवें ॥ १२१-१२४ ॥ देवतागण उस नदीमें आनन्दपूर्व्वक अवगाहन करके अभ्युदय को प्राप्त होते है और ऋषिगण उस नदीके दोनों तटोंपर समासीन तथा ब्रह्म ध्यानमें मग्न होकर निःश्रेयस पदको प्राप्त होते हैं ॥ १२५--१२६ ॥ आपलोग निरन्तर उन बन्धोंको सुदृढ़ रखनेके लिये उनके पास रहकर उनकी रक्षा करने में प्रवृत्त हो और आपके इस जगन्मङ्गलकर शुभकार्य्यमें सदाचारी ब्राह्मणगण और सती नारियाँ सहायक हैं ।। १२७-१२८ ॥

इस प्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रह्मविद्या सम्बन्धी योग-
शास्त्रका सद्दाशिवपितृसंवादात्मक दैवलोक
निरुपणात्मक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ ।



अध्यात्मतत्त्वनिरूपणम् ।

पितर ऊचुः ॥ १ ॥

तवापारकृपाराशेर्ज्ञानाधार ! जगद्गुरो ! ।
अस्माकं निखिलाः शङ्का निरस्ता नितरां विभो ! ॥२॥
दैवराज्यरहस्यञ्च श्रावं श्रावं दयानिधे ! ।
अस्माभिः परमोत्साहः समासादि न संशयः ॥ ३ ॥
कृपयाऽऽध्यात्मिकं पुण्यं रहस्यं श्रावयाऽद्य नः ।
शास्त्रसङ्घे कथं नाथ ! वेदार्थप्रतिपादके ॥ ४ ॥
वैमत्यं वै वरीवर्त्ति नैकमत्ये च सत्यपि ।
धर्म्मस्याद्वैतरूपं स्यात्कथं वा हृदयङ्गमम् ॥ ५ ॥

सदाशिव उवाच ॥ ६ ॥

श्यामाया नास्ति मच्छक्तेः कोऽपि भेदो मया सह ।
यतोऽव्यक्तदशायां सा मल्लीनैवाऽवतिष्ठते ॥ ७ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे ज्ञानाधार जगद्गुरो ! हे विभो । आपकी अपार कृपासे हमारी सब शङ्काएँ दूर हुई ॥ २ ॥ और हे दयानिधे ! दैवीराज्यका रहस्य सुन सुनकर हमें परम उत्साह प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ अव आप कृपाकरके हमें पवित्र अध्यात्म-रहस्य सुनाइये और हे नाथ ! यह बताइये कि वेदार्थप्रतिपादक शास्त्रोंमें मतभेद क्यों हैं और मतभेद रहते हुए धर्म्मका अद्वैतरूप कैसे हृदयङ्गम हो सकता है ॥ ४-५ ॥

श्रीसदाशिव वोले ॥ ६ ॥

हे पितृगण ! मुझमें और मेंरी शक्ति श्यामामें कोई भी भेद नहीं है, क्योंकि वह अव्यक्त दशामें मुझमें लींन रहती है ॥ ७ ॥

अद्य यां मत्पृथग्भूतां श्यामां मेऽङ्के स्थितां पराम् ।
निरीक्षन्ते भवन्तोऽस्या व्यक्तावस्थाऽस्त्यसौ ध्रुवम् ॥८॥
अस्म्यहं सच्चिदानन्दाद्वैतज्ञानमयो विभुः ।
श्यामाया मन्न पार्थक्यं तद्दशायां प्रतीयते ॥ ९ ॥
सद्भावं मे समाश्रित्य यदाऽसौ प्रकृतिः परा ।
प्रकटीकर्त्तुमानन्दविलासं जीवमोहकम् ॥१०॥
दृश्यप्रपञ्चसङ्घातस्वरूपं व्यक्तिमेत्यलम् ।
तदाऽहमेव चिद्भावमाश्रितः स्यां निरीक्षकः ॥ ११ ॥
प्रकृतेः पुरुषस्यापि सच्छृङ्गारात्मकं जगत् ।
तदैवोत्पद्यते नूनं पितरो नात्र संशयः ॥ १२ ॥
मूलमाध्यात्मिकस्यास्ते रहस्यस्यैतदेव हि ।
नात्र कश्चन सन्देहः कर्त्तव्यो विस्मयोऽथवा ॥ १३ ॥
अविद्यारूपमाश्रित्य प्रकृतिर्मे निरन्तरम् ।
जीवत्वं सर्वभूतेभ्यः सम्प्रदत्ते स्वधाभुजः ! ॥ १४ ॥

अब जो आपलोग मुझसे अलग तथा मेंरे अङ्कस्थित श्यामाको देख रहे हैं, यह उसकी व्यक्तावस्था है ॥८॥ मैं सच्चिदानन्दमय और अद्वैत-ज्ञानस्वरूप हूँ। उस दशामें श्यामाका मुझसे पार्थक्य अनुभूत नहीं हो सकता है ॥ ९ ॥ जब मेंरी परा प्रकृति मेंरे सत्भावको आश्रय करके जीवमुग्धकारी दृश्य प्रपञ्चरूपी आनन्द-विलासको प्रकट करनेके लिये व्यक्ता होती है तब मैं ही चितभावमें स्थित रहकर ईक्षण करता हूँ ॥ १०-११ ॥ उसी समय हे पितृगण ! प्रकृति-पुरुष-शृङ्गारात्मक संसार उत्पन्न होता है, यही अध्यात्मरहस्यका मूल है, इसमें सन्देह या विस्मय न करना चाहिये ॥ १२॥१३ ॥ मेरी प्रकृति ही हे पितृगण ! अविद्यारूप धारण करके सब जीवोंको जीवत्व प्रदान करती है और पुनः मेरी प्रकृति ही विद्यारूप धारण करके

भूयो विद्यास्वरूपं हि धृत्वा निःश्रेयसम्पदम् ।
प्रदत्ते सैव जीवेभ्यो नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १५ ॥
अहन्तु केवलज्ञानस्वरूपः प्रकृतेरिदम् ।
सृष्टेर्लीलाललामालं सन्निरीक्षे मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
श्यामा सानन्दमङ्के मे समासीनैव सन्ततम् ।
विश्वलीलाललामेदं सलीलं वितनोत्यलम् ॥ १७ ॥
अस्य विश्वविलासस्य प्रकृत्या सहितस्य मे ।
स्वरूपं हि यथातथ्यमात्मज्ञानेन दृश्यते ॥ १८ ॥
ज्ञानिभक्तश्च यो मेऽलं द्रष्टुमेतद् यथार्थतः ।
स एव धार्म्मिकोऽध्यात्मरहस्यज्ञो यथार्थतः ॥१९॥
मत्सायुज्यमवाप्नोति भाग्यवान्नात्र संशयः ।
मत्सायुज्यदशामेत्य लभते च कृतार्थताम् ॥ २० ॥
यथा सञ्चालकास्सन्ति भवन्तः पितरो ध्रुवम् ।
आधिभौतिकराज्यस्य देवाश्च निखिला यथा ॥ २१ ॥
आधिदैविकराज्यस्य चालका अपि रक्षकाः ।
ऋषयोऽध्यात्मराज्यस्य चालका रक्षकास्तथा ॥२२॥

जीवमुक्ति विधायिनी बनती है ।। १४--१५ ।। मैं केवल ज्ञानस्वरूप होकर प्रकृतिकी यह सब सृष्टिलीला देखा करता हूँ ।। १६।। श्यामा मेरे ही अङ्कपर आनन्दपूर्व्वक आसीना रहकर संसारकी इस विचित्र लीलाको अनायास विस्तार करती है ।। १७ ।। मेरे प्रकृतिके सहित इस संसार विलासका यथार्थ स्वरूप आत्मज्ञान के द्वारा ही देखा जाता है और जो मेरा ज्ञानी भक्त इसको यथार्थरूपमें दर्शन करने सें समर्थ होता है वही भाग्यवान् परमधार्म्मिक अध्यात्म-रहस्यका यथार्थ ज्ञाता होकर मत्सायुज्यको लाभ करके कृतार्थ हो जाता है ।। १८--२० ।। हे पितृगण ! जिसप्रकार आपलोग आधि-भौतिक राज्यके चालक हो, जिसप्रकार देवतागण आधिदैविक राज्यके चालक और रक्षक हैं, उसीप्रकार ऋषिगण अध्यात्म-राज्यके

स्वभावतो नियोज्येरन् प्राणिनां सम्प्रवृत्तयः ।
चतुर्धा नात्र सन्देहो विद्यते विश्वभूतिदाः ॥ २३ ॥
प्रकृतिः शूद्रवर्णस्य दासी कामस्य सत्यलम् ।
तमोधाराश्रिता शश्वज्जायते परिणामिनी ॥ २४ ॥
प्रकृतिर्वैश्यवर्णस्य सत्यर्थानुचरी सदा ।
अस्मिन् प्रधानतो लोके जायते परिणामिनी ॥ २५ ॥
क्षत्रियप्रकृतिर्धर्म्मलक्ष्येणैव प्रधानतः ।
परिणामं किलाप्नोति पितरो नात्र संशयः ॥ २६ ॥
ब्राह्मणप्रकृतिर्मुख्यं मोक्षलक्ष्यं निरन्तरम् ।
निजायत्तं प्रकुर्वाणा नूनमग्रे सरेदिह ॥ २७ ॥
चातुर्वर्ण्यैकधर्म्मस्य गुह्याद्गुह्यतरं परम् ।
रहस्यं पितरो नूनमेतदेवास्ति शाश्वतम् ॥ २८ ॥
धर्म्ममोक्षपरा एवाकृष्यन्ते तेजसा मम ।
या मे शक्तिः सदा जीवान् समाकर्षति साम्प्रति ॥२९॥
तदेव तेजः सम्प्रोक्तं यतो वेदान्तपारगैः ।
धर्म्ममोक्षात्मकं नित्यं स्वलक्ष्यं यैः स्थिरीकृतम् ॥३०॥

चालक और रक्षक हैं ॥ २१--२२ ॥ हे पितृगण ! जीवकी प्रवृत्ति स्वभावतः चार प्रकारसे नियोजित होती है, इसमें संदेह नहीं ॥ २३॥ शूद्रप्रकृति कामकी दासी होकर तमकी धारा आश्रय करती हुई सदा परिणामिनी होती है । वैश्यप्रकृति प्रधानतः अर्थकी दासी होकर इस संसारमे परिणामको प्राप्त होती है । क्षत्रिय-प्रकृति प्रधानतः धर्म्मलक्ष्य से ही परिणामको प्राप्त होती है और ब्राह्मण-प्रकृति प्रधानतः मोक्षको अपने लक्ष्याधीन रखकर इस विश्वमें अग्रसर होती है । हे पितृगण ! यही चातुर्वर्ण्य धर्म्मका सनातन अति गुह्य रहस्य है । २४–२८॥ धर्म्म और मोक्षके लक्ष्य करने वाले ही मेरे तेजसे आकृष्ट होते हैं, क्योंकि मेरी जो शक्ति जीवको मेरी ओर आकृष्ट करती है उसीको वेदान्तपारगोंने तेज कहा है । धर्म्म और मोक्षको नित्य अपने लक्ष्यमें

पुण्यवन्तस्त एवाहो वाच्यास्तेजस्विनो ननु ।
स्वभावतः प्रसीदन्ति तेषु देवर्षयो ध्रुवम् ॥ ३१ ॥
अतोऽन्तः करणेऽध्यात्मरहस्यस्य यथाक्रमम् ।
विकाशो जायते तेषां नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ३२ ॥
ततस्ते सँल्लभन्तेऽन्ते मत्सायुज्यमसंशयम् ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिर्हे स्वधाभुजः ! ॥ ३३ ॥
वर्त्तन्ते पितरो यानि भुवनानि चतुर्दश ।
ऋषीणामधिकारोऽस्ति सर्वथाक्षुण्ण एष्वलम् ॥ ३४ ॥
यथा देवाधिकारो हि सर्वां सृष्टिं समश्नुते ।
देवानुशासिता सा स्यादसुरैर्वाऽनुशासिता ॥ ३५ ॥
ब्रह्माण्डपिण्डसञ्जुष्टां जङ्गमस्थावरात्मिकाम् ।
सम्पूर्णां ताम्परिव्याप्य दैवी शक्तिर्विराजते ॥ ३६ ।
ज्ञानराज्याधिदैवानामधिकारस्तथैव हि ।
अस्ति व्याप्तः किलर्षीणां भुवनानि चतुर्दश ॥ ३७ ॥

रखनेवाले पुण्यात्मा तेजस्वी कहलाते हैं और उनपर देवताओंकी तथा ऋषियोंकी स्वभावतः प्रसन्नता होती है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २९-३१ ॥ इसी कारण उनके अन्तःकरणमें अध्यात्मरहस्यका क्रमविकाश होता है और अन्तमें वे निश्चय ही मत्सायुज्यको प्राप्त कर लेते है, हे पितृगण ! इसमें विस्मय न करें ॥ ३२-३३ ॥ हे पितृगण ! ऋषिकों अधिकार चतुर्दश भुवनोंमें सर्वथा अक्षुण्ण है ॥ ३४ ॥ जिस प्रकार देवताओंका अधिकार सम्पूर्ण सृष्टिमें परिव्याप्त है। चाहे देवी अनुशासन हो, चाहे आसुरी अनुशासन हो, ब्रह्माण्ड-पिण्डात्मक और जड़चेतनात्मक सब सृष्टिमें दैवीशक्ति व्याप्त है, उसी प्रकार ज्ञानके अधिष्टातृदेवता ऋषियोंका अधिकार चतुर्दश भुवनमें परिव्याप्त है, परन्तु हे पितरो ! उनका कार्य्य उसी पिण्डमें

किन्तु तत्रैव पिण्डेऽलं तेषां कार्य्यं प्रकाशते।
सम्पूर्णैः पञ्चकोषाणां विकाशैर्यः प्रपूरितः॥ ३८॥
क्षेत्रं ज्ञानविकाशस्य प्रजायेत स्वधाभुजः!
नात्र कश्चन सन्देह ऋषीणां पूजनं ध्रुवम्॥ ३९॥
जायते निखिलेष्वेव भुवनेषु प्रतिक्षणम्।
प्रतिष्ठास्थानमास्ते मे यतो हि ज्ञानभूमयः॥ ४०॥
पितरो ज्ञानराज्यस्य विस्तीर्णस्य रहस्यकम्।
अपूर्वं भवतो वच्मि श्रूयतां सुसमाहितैः॥ ४१॥
ममैवाध्यात्मिकज्ञानमूलिकाः शास्त्रराशयः।
स्थूलान्नमयकोषेण सम्बन्धस्थापनक्षणे॥ ४२॥
स्थूलाक्षरमयं रूपैर्वर्त्तरन् पुस्तकात्मकैः।
अत्र नानाविधैर्नूनं विश्वस्मिन् सम्प्रकाशिताः॥ ४३॥
स्थूलपुस्तकपुञ्जोऽयं यद्यप्यास्ते विनश्वरः।
स्थूलाक्षरमयानाञ्च पुस्तकानां यथायथम्॥ ४४॥
भवेतामीदृशां देशकालपात्रप्रभेदतः।
आविर्भावतिरोभावौ यथाकालं न संशयः॥ ४५॥

प्रकट होता है जो पिण्ड पञ्चकोषके पूर्ण विकाशसे पूर्ण होकर ज्ञानविकाशका क्षेत्र बन जाता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, सब भुवनोंमें ही ऋषिगण सदा पूजे जाते हैं। क्योंकि ज्ञानभूमियाँ ही मेरी प्रतिष्ठाका स्थान हैं॥ ३५-४०॥ हे पितृगण! ज्ञानराज्य-विस्तारका अपूर्व्व रहस्य मैं आप लोगोंसे कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो॥ ४१॥ मेरे अध्यात्मज्ञान-मूलक शास्त्रसमूह स्थूल अन्नमय-कोषसे सम्बन्ध रखनेके समय इस संसारमें अनेक प्रकारसे प्रकाशित स्थूल अक्षरमय पुस्तकोंके रूपमें विद्यमान रहते हैं॥४२--४३॥ यद्यपि स्थूलपुस्तक--समूह नाशवान् हैं और इस प्रकारके स्थूल अक्षरमय पुस्तक--समूहका देश, काल और पात्रके प्रभेदसे समय २ पर, आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है, परन्तु सूक्ष्मराज्यमें

सूक्ष्मराज्ये तु शास्त्राणां नित्यसंस्थितिहेतवे ।
चतुर्विधानि वर्त्तन्ते पुस्तकान्यपराण्यपि ॥ ४६ ॥
ब्रह्माण्डपिण्डौ नादश्च बिन्दुरक्षरमेव च ।
पञ्चप्रकारकाण्याहुः पुस्तकानि पुराविदः ॥ ४७ ॥
श्रुतिर्नादे स्मृतिर्बिन्दौ ब्रह्माण्डे तन्त्रमेव च ।
पिण्डे च वैद्यकं शास्त्रमक्षरेऽन्यदुदाहृतम् ॥ ४८ ॥
नूनं ज्ञानस्य नित्यत्वान्नित्याः शास्त्रसमुच्चयाः ।
एते पञ्चविधेष्वेषु क्वापि तिष्ठन्ति पुस्तके ॥ ४९ ॥
पञ्चप्रकारकं सर्वं पुस्तकं प्रलयक्षणे ।
वेदेषु प्रविलीयैव भजते मां न संशयः ॥ ५० ॥
पञ्चभावप्रपन्नानां पुस्तकानां स्वधाभुजः ! ।
रक्षका ऋषयो नूनं विद्यन्ते च प्रकाशकाः ॥ ५१ ॥
अध्यात्मज्ञानमास्ते हि विभक्तं सप्तभूमिषु ।
ऋषिशब्दे ह्यतो ज्ञानभूमिज्ञानप्रकाशके ॥ ५२ ॥

शास्त्रोंकी नित्य स्थिति रहनेके लिये और भी चार प्रकारकी पुस्तकें हैं। इसी कारण पुस्तकोंके पांच भेद हैं; यथा, ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, बिन्दु और अक्षरमय ॥४४-४७॥ इन पांच प्रकारकी पुस्तकोंका एक २ उदाहरण बताया जाता है। यथा--नादमयी पुस्तकका उदा--हरण श्रुति है, बिन्दुमयी पुस्तकका उदाहरण स्मृति है, ब्रह्माण्ड--मयी पुस्तकका उदाहरण तंत्र है, पिण्डमयी पुस्तकका उदाहरण वैद्यक शास्त्र है और इनसे अतिरिक्त पृथ्वीके अन्यान्य ग्रन्थ अक्षर--मयी पुस्तकके उदाहरण हैं ॥ ४८ ॥ ज्ञान नित्य होनेके कारण नित्य शास्त्रसमूह इन पुस्तकोंमें से किसी पुस्तकमें अवश्य विद्यमान रहते हैं और प्रलयावस्थामैं भी ये पुस्तकसमूह वेदमें लय होकर मुझको प्राप्त होते है॥४९-५०॥हे पितृगण! ऋषिगणही इनपञ्चभावापन्न शास्त्रोंके प्रकाशक और रक्षक हैं ॥५१॥ और अध्यात्मज्ञान सप्त भूमि-काओंमें विभक्त होनेके कारण उन ज्ञानभूमियोंके ज्ञानके प्रकाशक

भेदोऽवश्यं भवेदत्र संशयावसरः कुतः ।
ऋषिप्रवर्त्तिते स्वच्छे निदिध्यासनवर्त्मनि ।। ५३ ।।
अधिकारप्रभेदाश्च सम्भवेयुर्न संशयः ।
ऋषीणां किन्तु लक्ष्येषु भेदो नास्ति कदाचन ।। ५४ ।।
सिद्धान्तेषु स्वकीयेषु विनाऽभ्रान्तिं स्वधाभुजः ! ।
स्वस्वप्रदर्शितज्ञानमार्गे वा केऽपि नेशते ।। ५५ ।।
ऋषीणां पदवीं पुण्यां परिलब्धुं कदाचन ।
निश्चितं वित्त पितरो नात्र कश्चन संशयः ।। ५६ ।।
ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः कथ्यन्ते नात्र संशयः ।
शब्दास्त एव मन्त्राः स्युर्ये मद्रूपप्रकाशकाः ।।५७।।
अतो ये शक्नुवन्तीह मन्त्रान् द्रष्टुं स्वधाभुजः ! ।
अहो मामपि ते द्रष्टुं क्षमन्ते नात्र संशयः ।। ५८ ।।
दुर्दमाया हि मायायाः प्रभावात्पितरो ध्रुवम् ।
यद्यपि स्वस्वरूपं मे वाङ्मनोबुद्ध्यगोचरम् ।। ५९ ।।

ऋषियों कें शब्दों में अवश्य भेद रहता है और ऋषियों के द्वारा प्रवर्तित निदिध्यासन-मार्गके अधिकारोंमें भी अवश्य भेद रहता है, परन्तु ऋषियों के लक्ष्यमें कदापि भेद नहीं रहता है ।।५२-५४।। हे पितृगण ! अपने २ सिद्धान्तमें और अपने अपने प्रदर्शित ज्ञानपथमें अभ्रान्त हुए विना कोई भी ऋषिपदवीको नहीं प्राप्त कर सकता । हे पितृगण ! इसको निश्चय जानो, इसमें संदेह नहीं है ।। ५५--५६ ।। मंत्रके द्रष्टा ऋषि कहाते हैं । मेरे रूपका बतानेवाला जो शब्द है उनीको मन्त्र कहते हैं; इस कारण जो मन्त्रको देख सकते हैं वे मुझे भी देख सकते हैं ।। ५७--५८ ।। पितृगण ! यद्यपि मेरी दुर्दमनीय मायाके प्रभाव से मेरे वाक् मन और बुद्धिसे अगोचर स्वस्वरूप अथवा उसके चिद्-

अथवा चिद्विलासस्य तस्य ज्ञानं यथार्थतः ।
नानुभूतं भवेन्नूनं निखिलर्ष्यन्तरात्मनि ॥ ६० ॥
तथापि मन्त्रद्रष्टृत्वात्ते मज्ज्ञानावबोधिनः ।
भवेयुर्नात्र सन्देहः सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ ६१ ॥
अतः परस्परं तेषां मतं नूनं स्वधाभुजः ! ।
मद्यथार्थस्वरूपस्य ज्ञाने नैव विभिद्यते ॥ ६२ ॥
पुरुषार्थाधिकाराणां भेदैर्हि ज्ञानभूमिषु ।
विरोध इव भासेत भूमिभेदैश्च केवलम् ॥ ६३ ॥
मत्तः पराङ्मुखा एव तत्त्वज्ञानाध्वकण्टके ।
पतन्त्येवंविधे गर्त्ते विरोधभ्रमपङ्किले ॥ ६४ ॥
यथा पर्वतवास्तव्या मानवाः शिक्षयन्त्यहो ।
स्वानुरूपां गतिं विज्ञाः ! समभूमिनिवासिनः ॥ ६५ ॥
एकस्या ज्ञानभूमेश्च तथा दर्शनशासनम् ।
स्वीयां गतिं प्रशंसन्तो दूषयन्तश्च तद्गतिम् ॥ ६६ ॥

विलासका ज्ञान सब ऋषियोंको सम्यक् प्रकारसे अनुभूत न होता हो, परंन्तु वे मंत्रद्रष्टा होनेसे मेरे ज्ञानके ज्ञाता हैं, इसमें संदेह नहीं। यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ५९-६१ ॥ अतः मेरे यथार्थ स्वरूपके ज्ञानमें उनके परस्पर यथार्थरूपसे मतभेद हो नहीं सकता है ॥ ६२ ॥ केवल भूमिभेद, अधिकारभेद और पुरुषार्थभेद होनेके कारण इन ज्ञान भूमियोंमें विरोधाभास प्रतीत होता है ॥ ३३ ॥ मुझसे विमुख लोग ही तत्त्वज्ञानके पथके कण्टकरूपी ऐसे विरोध और भ्रमसे भरे हुए गड्ढेमें पतित हुआ करते हैं ॥ ६४ ॥ हे विज्ञो ! पर्व्वतवासी मनुष्य जिसप्रकार समतलवासी मनुष्योंके चलनेकी शैली का दोष-दर्शन कराके अपनी गतिकी प्रशंसा करते हुए पर्व्वत-आरोहण-प्रणाली सिखाया करते हैं, ठीक उसी प्रकार एक ज्ञान भूमिका दर्शन दूसरी ज्ञानभूमिके दर्शनशास्त्रों की विज्ञानशैलीका कदाचित् खण्डन

विज्ञानरीतिमन्यस्याः क्वचिद्विप्रतिपादयेत् ।
नास्ति तत्खण्डनं कल्याः ! मतस्यान्यस्य निश्चितम् ॥६७॥
अपि तु स्वमतस्यास्ति पोषकं सर्वथा यतः ।
तत्खण्डनमतो भक्ता ज्ञानिनो मण्डनं विदुः ॥ ६८ ॥
यदा सुकवयो नैशमाकाशं वर्णयन्त्यहो ।
दिवाकाशस्तदा नूनं स्वत एवावधीर्य्यते ॥ ६९ ॥
दिवाकाशप्रशंसायां कृतायां कविभिः खलु ।
व्योम्नो नैशस्य जायेत स्वत एव पराभवः ॥ ७० ॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनां तथा दर्शनसप्तके ।
निन्दकानि च वाक्यानि स्तवकानि क्वचित् क्वचित् ॥७१
लभ्यन्ते यैर्विमुह्यन्ति मानसान्यल्पमेधसाम् ।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ॥ ७२ ॥
केवलं पितरो ज्ञानभूमिपार्थक्यतो ध्रुवम् ।
स्वरूपे चिन्मये तैर्नु निरीक्ष्येऽहं पृथक् पृथक् ॥७३॥
पार्थक्याज्ज्ञानभूमीनां तत्पार्थक्यं न तत्त्वतः ।
यथा सोपानतो मर्त्त्य एकस्मादपरं क्रमात् ॥ ७४ ॥

करता है, उसको मेरे ज्ञानी भक्त परमतका खण्डन नहीं समझते बल्कि स्वमतकी पुष्टि समझते हैं ॥ ६५-६८ ॥ कवि जब रात्रिके आकाशका वर्णन करता है तो स्वतः ही दिनके आकाशकी निन्दा हो जाती है और जब वह दिनके आकाशका वर्णन करता है तो रात्रिके आकाशकी निन्दा स्वतः ही हो जाती है, इसी प्रकार निन्दास्तुतिका सम्बन्ध इन सातों ज्ञानभूमियोंके दर्शनशास्त्रोंमें कहीं कहीं पाया जाता है, जिससे अल्पबुद्धियोंका मन घबरा जाता है। हे पितृगण ! इसमें आपलोग विस्मय न करें ॥ ३९-७२ ॥ हे पितृगण ! केवल ज्ञानभूमियोंकी पृथक्तासे ही मैं चिन्मयस्वरूप में उनको पृथक् पृथक् दिखाई पड़ता हूँ ॥ ७३ ॥ वह पृथक्ता ज्ञानभूमिके कारण है तत्त्वतः नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य एक सोपानके

प्रासादस्य समारोहन् पृष्ठमारोहति ध्रुवम् ।
शास्त्रासक्तास्तथा भक्ता लभन्ते सन्निधिं मम ॥ ७५ ॥
शास्त्रान्तरमतानाञ्च भेदोऽप्येवं विबुध्यताम् ।
क्रियतां नात्र सन्देहो विस्मयो न विधीयताम् ॥ ७६ ॥
भावैराध्यात्मिकैः पूर्णः शास्त्रपुञ्जो यतोऽजनि ।
ऋतम्भराख्यबुद्धेश्चाधिकारिभेदलक्ष्यतः ॥ ७७ ॥
अतो यथार्थतो नास्ति मिथोऽमुष्य विरोधिता ।
मत्वाऽप्यनादिकां ब्रह्माश्रयीभूताश्च भूतिदाः ! ॥ ७८ ॥
मायां वैदान्तिकाः सान्तां मन्यन्ते जगतो ह्यतः ।
असत्यत्वं प्रमातुं वै क्षमन्ते स्म न संशयः ॥ ७९ ॥
भक्तिशास्त्रे पुनर्दैवीमीमांसानामके हिते ।
मायां तां ब्रह्मणः शक्तिं मत्वा भक्तैः प्रकल्प्यते ॥८०॥
अभिन्नत्वं तयोः कल्याः ! उभयोर्ब्रह्ममाययोः ।
शक्तिशक्तिमतोर्यस्मात् भेदाभावः प्रसिध्यति ॥ ८१ ॥

बाद दूसरा सोपान आरोहण करता हुआ अन्तमें छतपर चढ़ ही जाता है, उसी प्रकार शास्त्रनिरत मेरे भक्त मुझ तक पहुंच ही जाते हैं ॥ ७४-७५ ॥ हे पितृगण! शास्त्रान्तरोंका मतभेद भी ऐसा ही जानिये, इसमें सन्देह या विस्मय न करिये ॥ ७६ ॥ मेरे अध्यात्म-भावसे पूर्ण शास्त्रसमूह ऋतम्भरासे उत्पन्न होनेके कारण और अधिकारिभेदके लक्ष्यसे कहे जानेके कारण इनका परस्पर यथार्थ विरोध नहीं है। वेदान्तशास्त्रने मायाको ब्रह्मकी आश्रयभूता अनादि मानकर भी सान्त माना है। इसी कारण यह शास्त्र जगत्को मिथ्यारूप प्रमाणित कर सका है एवं हे पितृगण! दैवीमीमांसारूपी उपासनाकाण्ड–सम्बन्धीय भक्तिशास्त्रने मायाको ब्रह्मशक्ति मानकर ब्रह्म और मायामें अभेद बताया है; क्योंकि शक्ति और शक्तिमान्में

लोके शक्तेर्यथा नास्ति भेदः शक्तिमता सह ।
ब्रह्मशक्तेस्तथा नास्ति भेदो वै ब्रह्मणा सह ॥ ८२ ॥
यथा शक्तिमतः शक्तिस्तत्रैवाऽव्यक्ततां गता ।
कदाचिद्व्यक्तिमापन्ना तत्पृथक्त्वेन भासते ॥ ८३ ॥
तथैवोपासनाशास्त्रविधानेन स्वधाभुजः !
सृष्टेर्दशायां द्वैतत्वं मुक्तावद्वैतता मता ॥ ८४ ॥
एतद्विज्ञानतो नूनमद्वैतद्वैतयोर्द्वयोः ।
कश्चिद्विरोधो नैवास्त्युपासना सिद्ध्यति त्वलम् ॥८५॥
तत्त्वजिज्ञासवः कल्याः ! एवमेव समन्वयः ।
साङ्ख्यादिदर्शनैः सार्द्धं वेदान्तस्य भवेद्ध्रुवम् ॥८६॥
अतोऽयुक्ताऽस्ति शास्त्रेषु विरोधस्यैव कल्पना ।
तस्माद्भवद्भिः शास्त्रेषु विरोधो नैव दृश्यताम् ॥ ८७॥
ज्ञानस्य पितरो नूनं तिस्रः श्रेण्यो भवन्ति ह ।
तत्राधिभौतिकं ज्ञानं शाखानन्त्यसमन्वितम् ॥ ८८ ॥

अभेद होना प्रसिद्ध है ॥ ७७-८१ ॥ जैसे मैं और मेरी शक्ति, ऐसा कहनेमें दोनोंका अभेद सिद्ध होता है, ऐसे ही ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति मायामें अभेद है ॥ ८२ ॥ जैसे शक्तिमान्की शक्ति उसमें कभी अव्यक्त रहती है और कभी उससे प्रकाशित होकर अलग प्रतीत होती है उसी प्रकार उपासना-शास्त्रके अनुसार सृष्टिदशामें द्वैतवाद और मुक्तिदशामें अद्वैतवाद, दोनों ही सिद्ध होते हैं ॥ ८३-८४ ॥ सुतरां इस विज्ञानके अनुसार द्वैत और अद्वैतवादका कोई भी विरोध नहीं हो सकता और उपासनाकी सर्व्वथा सिद्धि होती है ॥ ८५ ॥ हे पितरो ! सांख्य आदि शास्त्रोंके साथ वेदान्तशास्त्रका समन्वय भी इसी ढंगपर हो सकता है, इस कारण शास्त्रोंमें विरोधकी कल्पना करना उचित नही है। इसलिये आप लोग शास्त्रोंमें विरोध न देखें ॥ ८६-८७ ॥ हे पितृगण ! ज्ञानकी तीन श्रेणियाँ हैं, आधिभौतिक ज्ञान अनन्तशाखायुक्त होकर नाना पदार्थविद्याओंमें परिणत हुआ है; वह

आद्यं पदार्थविद्यायां परिणामं व्रजत्यलम् ।
तन्वाधिदैविकं ज्ञानं द्वितीयं पितरस्तथा ॥ ८९ ॥
अनेकाभिश्च शाखाभिरुपेतं विद्यते ध्रुवम् ।
यतो दैवं जगन्नूनं विद्यतेऽतीव विस्तृतम् ॥ ९० ॥
स्थूलसृष्टेस्तद्देवास्ते कारणं पितरस्तथा ।
परन्त्वन्तिमसध्यात्मज्ञानं वै सप्तभूमिषु ॥ ९१ ॥
संविभक्तं वरीवर्त्ति केवलं नात्र संशयः ।
तस्यानेकासु शाखासु विद्यमानास्वपि ध्रुवम् ॥ ९२ ॥
विभक्ताः स्युश्च ताः सर्वाः सप्तस्वेव हि भूमिषु ।
तदैव ज्ञानमाध्यात्मं सम्पूर्णश्चैव जायते ॥ ९३ ॥
यदा सर्वेषु भूतेष्वविभक्तोऽद्वैत एककः ।
ज्ञानदृष्ट्या निरीक्ष्येत भावो नूनं स्वधाभुजः ! ॥ ९४ ॥
देशे काले च पात्रे च सर्वत्रैवात्मवेदिभिः ।
न च कुत्रापि वाध्येत यदा तज्ज्ञानलोचनम् ॥ ९५ ॥
वेदसम्मतशास्त्रीया शैली सोपानसन्निभा ।
एतदाध्यात्मिकं ज्ञानं समुत्पाद्यैव प्राणिनः ॥ ९६ ॥

प्रथम है। द्वितीय आधिदैविक ज्ञान भी बहुशाखायुक्त है क्योंकि दैवी जगत् भी अतिविस्तृत है और दैवजगत् ही स्थूलसृष्टिका कारण है ; परन्तु अन्तिम अध्यात्मज्ञान केवल सात भूमियों में ही विभक्त है उसकी अनेक शाखाएँ होने पर भी सब सात भूमियोंमें ही विभक्त होती हैं और आध्यात्मिक ज्ञानकी पूर्णता तभी होती है जब सब भूतोंमें अविभक्त एक अद्वितीयभावको ज्ञानदृष्टिसे सब देश काल पात्रमें देखाजाय और कहीं वह ज्ञानदृष्टि वाधाको प्राप्त नहीं हो ॥ ८८--९५ ॥ वेदसम्मत शास्त्रीय सोपानशैली इसी अध्यात्मज्ञानको उत्पन्न करके जीवोंको मत्सायुज्य प्राप्त कराती है और मेरे सायु-

पितरः ! प्रापयत्यन्ते मत्सायुज्यं न संशयः ।
मत्सायुज्यदशां नीत्वा कृतार्थत्वं नयत्यलम् ॥ ९७ ॥
वैदिकानां हि शास्त्राणामेषैवास्ति प्रपूर्णता ।
महत्त्वञ्च तदेवास्ति तेषां नैवात्र संशयः ॥ ९८ ॥
नूनमाश्रमधर्मोऽपि ज्ञानस्यास्य सहायकः ।
उत्पादने वरीवर्त्ति परमः पितृपुङ्गवाः ! ॥ ९९ ॥
ब्रह्मचर्य्याश्रमे नूनं गुरुसेवाविधानतः ।
लक्ष्यमध्यात्मविद्याया लभ्यते ब्रह्मचारिभिः ॥१००॥
लक्ष्यमात्मवलस्यापि गृहस्थैः संयमेन च ।
वानप्रस्थाश्रमस्थैश्च तपसाऽऽत्मधन ध्रुवम् ॥ १०१ ॥
सन्न्यासिभिस्तु त्यागेनैवात्मधर्म्मोऽधिगम्यते ।
सर्वेषां पुरुषार्थानां यदास्ते फलमन्तिमम् ॥ १०२ ॥
वर्त्तते पितरोऽध्यात्मज्ञानस्याऽदः परम्पदम् ।
नात्र कश्चन सन्देहो विधेयो विस्मयोऽथवा ॥ १०३॥
अतो मे ज्ञानिनो भक्ताः सन्न्यासाश्रमवर्त्तिनः ।
आत्मधर्म्मसमायुक्ता मत्सायुज्यं व्रजन्त्यलम् ॥१०४॥

ज्यको प्राप्त कराकर कृतार्थ कर देती है। यही वैदिक शास्त्रोंका अवश्य पूर्णत्व और महत्त्व है ॥ ९६–९८ ॥ और आश्रमधर्म्म इसी ज्ञानके उत्पन्न करनेमें परम सहायक है ॥ ९८ ॥ हे श्रेष्ठ पितृगण ! ब्रह्मचर्य्याश्रममें ब्रह्मचारी आत्मविद्याके लक्ष्यको गुरुसेवासे प्राप्त करते हैं। गृहस्थाश्रमी आत्मवलके लक्ष्यको संयमके द्वारा प्राप्त करते हैं। वानप्रस्थाश्रमी आत्मधनको तपके द्वारा प्राप्त करते हैं। और सन्न्यासाश्रमी आत्मधर्म्मको त्यागके द्वारा प्राप्त करते हैं। जो सव पुरुषार्थोंका चरम फल है और अध्यात्मज्ञानका परमपद है। इसमें सन्देह या विस्मय न करना चाहिये ॥ १००--१०३ ॥ इसी कारण मेरे ज्ञानीभक्त सन्न्यासीगण आत्मधर्म्मयुक्त होकर मत्सा-

राजानः केऽपि संसारे विविधैश्वर्य्यशालिनः ।
वणिजो वित्तपूर्णा वा वस्तुतो धनिका न हि ॥१०५॥
ऐश्वर्य्यञ्च धनं तेषां यतः स्यात्क्षणभङ्गुरम् ।
अकिञ्चित्करमप्यास्ते पितरो नात्र संशयः ॥१०६॥
वस्तुतस्त्विह संसारे वानप्रस्थास्तपोधनाः ।
आत्मधर्म्मं तथैवात्मधनं सन्न्यासिनो गताः ॥१०७॥
ऐश्वर्य्यशालिनः सन्ति धनिकाश्चैव निश्चितम् ।
नैवात्र संशयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ! ॥१०८॥
आर्य्यजातौ क्रमान्नूनं शुद्धिः शोणितशुक्रयोः ।
पीठशुद्धेः समुत्पत्तौ परमास्ति सहायिका ॥ १०९॥
अध्यात्मलक्ष्यद्वारैव चक्रशुद्धिर्यथाक्रमम् ।
लभ्यते नात्र सन्देहो विद्यते पितरो ध्रुवम् ॥ ११० ॥
अतो वार्णाश्रमा धर्म्माः प्रवृत्ते रोधकास्तथा ।
निवृत्तेः पोषकाः सन्तो संशुद्धिं पीठचक्रयोः ॥१११॥

युज्यको प्राप्त करते हैं ॥ १०४ ॥ हे पितृगण ! इस संसारमें परम ऐश्वर्य्यवान् राजा अथवा अतिधनवान् वणिक् वास्तवमें धनवान् नहीं हैं क्योंकि उनका ऐश्वर्य्य और धन क्षणभङ्गुर और अकिञ्चित्-कर है और तपोधनप्राप्त वानप्रस्थ अथवा आत्मधन और आत्म-धर्म्मप्राप्त सन्न्यासी ही यथार्थमें ऐश्वर्य्यवान् और धनी है इसमें आपलोग सन्देह न करें ॥१०५–१०८॥ हे पितृगण ! रजवीर्य्यकीशुद्धि ही क्रमशः आर्यजातिमें पीठशुद्धिको उत्पन्न करनेकी परम सहा-यक है और अध्यात्म लक्ष्यके द्वारा ही क्रमशः चक्रशुद्धि प्राप्त हुआ करती है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १०९--११० ॥ इसी कारण वर्णधर्म्म और आश्रमधर्म्म प्रवृत्तिरोधक और निवृत्तिपोषक होते हुए पीठ-शुद्धि और चक्रशुद्धिके परम सहायक बना करते हैं इसमें कुछ

समुत्पादयितुं नूनं पराः सन्ति सहायकाः ।
नात्र कश्चन सन्देहो विद्यते हे स्वधाभुजः ! ॥ ११२ ॥
इच्छाम्यहं निजानन्दे द्वैतभावं निमज्जितुम् ।
आद्यावस्थेयमेवास्ते पितरो नात्र संशयः ॥११३॥
मम शक्तिस्ततः श्यामा मत्त एव प्रकाश्य च ।
ब्रह्मानन्दसमुल्लासरूपिणी जगतोऽस्य हि ॥११४॥
निदानं जायते नूनं द्वैतभावे मनोहरे ।
असावेव द्वितीयास्ति नन्ववस्था स्वधाभुजः ! ॥११५॥
नारीधारा नृधारा च स्वतन्त्रा भुवने ततः ।
बैजीमारभते सृष्टिं तृतीया स्यादियं दशा ॥ ११६ ॥
नारीधारा प्रपूर्णत्वं सम्प्राप्ता तदनन्तरम् ।
सतीधर्म्मप्रभावेण नृधारायां विलीयते ॥ ११७ ॥
इयमेव चतुर्थी स्यादवस्था पितरो ध्रुवम् ।
स्वानुकूलां ततः शक्तिं निजां लब्ध्वा नरर्षभाः ॥११८॥
शक्तिमन्तः प्रपूर्णत्वं स्वाधीनत्वं च यान्ति वै ।
पञ्चमी विद्यते नूनमवस्थेयं न संशयः ॥ ११९ ॥

सन्देह नहीं है ॥ १११–११२ ॥ हे पितृगण ! मैं अपने आनन्दमें मग्न होनेके लिये द्वैतकी इच्छा करता हूँ यह प्रथम अवस्था है। तत्पश्चात् मेरीशक्ति मुझहीसे प्रकट होकर श्यामारूपिणी हो मनोरम द्वैतभाव में ब्रह्मानन्दविलासरूपी जगत्का आदि कारण बनती है, यही द्वितीया अवस्था है ॥ ११३–११५ ॥ हे पितृगण ! तत्पश्चात् संसारमें स्त्रीधारा और पुरुषधारा दो स्वतन्त्र होकर बैजी सृष्टि प्रारम्भ होती है यही तृतीयावस्था है। तत्पश्चात् जब स्त्रीधारा पूर्णताको प्राप्त होती है तो वह पुनः सतीत्वधर्म्मके प्रभावसे पुरुषधारामें लयको प्राप्त होती है यही चतुर्थ अवस्था है। तत्पश्चात् निज शक्तिको अपने अनुकूल पाकर शक्तिमान् होकर पुरुष स्वाधीन और पूर्ण बनता है यही

आचारवान् वै पुरुषो नूनं स्यात्तदनन्तरम् ।
इयं षष्ठी दशा बोध्या भवद्भिः पितृपुङ्गवाः ! ॥ १२० ॥
जातिधर्म्मविकाशस्य पूर्णत्वं जायते ततः ।
इयं हि सप्तमी नूनमवस्थाऽऽस्ते स्वधाभुजः ! ॥१२१॥
ततः शरीरसंशुद्धिः शूद्रधर्म्मेण जायते ।
इयं वै वर्त्ततेऽवस्था सर्वथा पितरोऽष्टमी ॥ १२२ ॥
इन्द्रियाणां ततः शुद्धिर्वैश्यधर्म्मेण जायते ।
इयं भोः पितरोऽवस्था नवमी सम्प्रकीर्त्तिता ॥ १२३ ॥
मनोराज्यस्य संशुद्धिः स्यात्ततः क्षात्रधर्म्मतः ।
इयमेवास्ति हे कव्याः ! अवस्था दशमी ध्रुवम् ॥१२४॥
बुद्धिराज्यस्य संशुद्ध्या ततो ब्राह्मणधर्म्मकः ।
पुनाति प्राणिनो नूनं दशैषैकादशी मता ॥ १२५ ॥
नूनमाश्रमधर्म्मस्य सम्बन्धाद्धि स्वधाभुजः ! ।
ब्रह्मचर्य्याश्रमप्राप्तधर्म्मेण ब्राह्मणोत्तमाः ॥ १२६ ॥

पञ्चमावस्था है। हे पितृवरो ! तत्पश्चात् पुरुष आचारवान् होता है यही षष्ठ अवस्था है। तत्पश्चात् जातिधर्म्मका पूर्ण विकाश होता है यही सप्तम अवस्था है। तत्पश्चात् शूद्रधर्म्मसे शरीरकी शुद्धि प्राप्त होती है यही अष्टम अवस्था है। तदनन्तर वैश्यधर्म्मसे इन्द्रियोंकी शुद्धि होती है यही नवम है। तदनन्तर क्षत्रियधर्म्म द्वारा मनोराज्यकी शुद्धि सम्पादित होती है यही दशम अवस्था है। तत्पश्चात् बुद्धिराज्यकी शुद्धि द्वारा ब्राह्मणधर्म्म जीवको पवित्र करता है यही एकादशवीं अवस्था है ॥ ११६-१२५ ॥ हे पितृगण ! आश्रमधर्म्मके सम्बन्धसे ब्राह्मचर्य्याश्रम धर्म्मके द्वारा ब्राह्मणको वेदकी प्राप्ति होती है यही द्वादशवीं अवस्था है। तत्पश्चात् गृहस्था-

वेदान् सम्प्राप्नुवन्त्येषा ह्यवस्था द्वादशी मता।
गार्हस्थ्ये च ततो विप्रा अध्यात्मज्ञानमूलकम् ॥१२७॥
वेदानुष्ठानमाश्रित्य दशां यान्ति त्रयोदशीम् ।
वानप्रस्थाश्रमस्याथ धर्म्मेण ब्राह्मणोत्तमाः ॥ १२८ ॥
यथार्थोपरतिं सम्यक् प्राप्नुवन्ति स्वधाभुजः ! ।
अस्या ह्युपरतेर्नूनं परवैराग्यमुद्भवेत् ॥ १२९ ॥
अवस्था पितरो नूनमेषैवास्ते चतुर्दशी ।
अतः परे दशे द्वे स्तः श्रूयेतां स्वधाभुजः ! ॥१३०॥
ततः सन्न्यासधर्म्मेण यथार्थात्मरतिर्ध्रुवम् ।
लभ्यते साधकैरेषा दशा पञ्चदशी मता ॥ १३१ ॥
ततो यो विषयानन्दे ब्रह्मानन्दो विवर्त्तितः ।
मालिन्यमाप्तवान् पूर्वं स्वस्वरूपमसौ पुनः ॥१३२॥
सम्प्राप्य पितरो नूनं सच्चिद्भावसमन्वितम् ।
भावमद्वैतमासाद्य परानन्दपदात्मकम् ॥ १३३ ॥
कैवल्यं लभते नित्यमवस्थेयं हि षोड़शी ।
एष एवास्ति वेदानां सारः श्रेयान् स्वधाभुजः ! ।१३४॥

श्रममें ब्राम्हण अध्यात्मज्ञानमूलक वेदानुष्ठानके द्वारा त्रयोदशवीं अवस्थाको प्राप्त करता है। वानप्रस्थाश्रमधर्म्म द्वारा श्रेष्ठ ब्राम्हण यथार्थ उपरतिको प्राप्त करता है यही उपरति परवैराग्य उत्पन्न करती है और यही चतुर्दशवीं अवस्था है। हे पितृगण ! इसके परे दो अवस्थाएं हैं सो सुनो ॥ १२६--१३० ॥ तदनन्तर सन्न्यासाश्रम धर्म्मके द्वारा यथार्थ आत्मरति प्राप्त होती है यही पञ्चदशवीं अवस्था है और अन्त में जो ब्रम्हानन्द विषयानन्दमें परिणत होकर मलिनताको प्राप्त हुआ था वह पुनः अपने स्वस्वरूपमें पहुंचकर सत् और चित्के भावसे युक्त और अद्वितीयभावको प्राप्त करके परमानन्दपदरूपी कैवल्यको प्राप्त करता है। यही सोलहवीं अवस्था है।

एतदेवास्ति वेदान्तरहस्यञ्चैव दुर्लभम् ।
एतदेव रहस्यञ्च सम्यग्रूपेण सत्वरम् ॥ १३५ ॥
अपरोक्षानुभूतिं हि कृत्वैवासादयन्त्यलम् ।
जीवन्मुक्तिपदं भक्ता ज्ञानिनो मे न संशयः ॥ १३६ ॥

इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे सदाशिवपितृसंवादेऽध्यात्मतत्त्वनिरूपणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

हे पितृगण ! यही वेदका सार है इसीको वेदान्तका दुर्लभ रहस्य कहते है और इस रहस्यको सम्यक्रूपसे अपरोक्षानुभव करके मेरे ज्ञानीभक्तगण शीघ्रही जीवन्मुक्त पदवीको प्राप्त करते हैं; इसमें सन्देह नहीं ॥ १३१-१३६ ॥

इस प्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रम्हविद्यासम्वन्धी योग-शास्त्रका सदाशिवपितृसंवादात्मक अध्वात्मतत्त्व-निरूपणनामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ ।

भगवद्भागवतसम्बन्धनिरूपणम् ।

पितर ऊचुः ॥ १ ॥

देवादिदेव ! सर्वज्ञ ! सर्वज्ञानाश्रयस्थल ! ।
गुरूणां हे गुरो ! नाथ ! कृपया ते कृपाम्बुधे ! ॥ २ ॥
वैदिकज्ञानकाण्डस्य सारं वेदान्तमद्भुतम् ।
गुह्यातिगुह्यमाकर्ण्य कृतकृत्या अभूम ह ॥ ३ ॥
किन्तु यद्भवता प्रोक्तं वेदान्तस्याधिकारिणः ।
ज्ञानवन्तोऽभिधीयन्ते जीवन्मुक्ता इति प्रभो ! ॥ ४ ॥
सम्भाव्यते कथं ह्येतत्तन्न विद्मो वयं विभो ! ।
अल्पज्ञ ईरितो जीवः सर्वज्ञोऽस्ति भवान् यतः ॥ ५ ॥
देशकालापरिच्छिन्नस्त्वं जीवश्चैकदेशिकः ।
समदर्शी भवानन्तर्याम्यहङ्कारवर्जितः ॥ ६ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे देवादिदेव ! हे सब ज्ञानों के आश्रयस्थल ! हे सर्वज्ञ ! हे गुरुओं के गुरु ! हे दयासागर ! हे नाथ ! आपकी कृपा से हम वैदिकज्ञानके साररूप वेदान्तका अद्भुत रहस्य सुनकर कृतकृत्य हुए ॥ २–३ ॥ परन्तु हे प्रभो ! आपने जो वेदान्त के अधिकारी ज्ञानी व्यक्तिको जीवन्मुक्त नामसे अभिहित किया है वह जीवन्मुक्त पदवी कैसे सम्भव है ? हे विभो ! इसको हमलोग नहीं जानते हैं क्योंकि हे शम्भो ! आप सर्वज्ञ हैं जीव अल्पज्ञ है, आप देश कालसे अपरिच्छिन्न हैं जीव देश कालसे परिच्छिन्न है, आप समदर्शी सबके अन्तर्यामी और अहङ्कारादिसे रहित हैं और जीव

जीवोऽहङ्कारवान् स्थूलासक्तश्चासमदर्शनः ।
जीवः स्वार्थी सदा शम्भो ! परार्थे तु परो भवान् ॥७॥
भवान् विश्वगुरुर्नूनं सर्वज्ञानखनिस्तथा ।
अस्त्यज्ञः सर्वथा जीवः स्वरूपज्ञानवर्जितः ॥ ८ ॥
अतो जीवः कथं शैवीमुत्तमां पदवीं गतः ।
जीवन्मुक्तोऽभिधीयेत ज्ञानानन्ददयार्णव ! ॥ ९ ॥
शरीरत्रितयोपेतो भवेज्जीवः कथं गुरो ! ।
शरीरत्रितयातीतो जीवन्मुक्तो महाजनः ॥ १० ॥
चतुर्भिर्दशभिर्लोकैः स्वकोषैः पञ्चभिस्तथा ।
सार्द्धं सम्बन्धयुक्तोऽपि तत्प्रभावान्वितोऽपि च ॥ ११ ॥
जीवन्मुक्तः कथं देव ! पदं मुक्तेरवाप्नुयात् ।
अघटघटनायां सा प्रकृतिस्ते पटीयसी ॥ १२ ॥
त्रिगुणैर्मोहयन्त्यास्ते निजैर्जीवांस्तथाप्यहो ।
जीवन्मुक्तो गुणातीतं पदं लब्धुमलं कथम् ॥ १३ ॥

असमदर्शी दृश्य में आसक्त और अहङ्कारी है, आप परार्थपर हैं और जीव स्वार्थी है, आप सबके गुरु और सब ज्ञानों की खानि हैं और जीव सर्वथा अज्ञ और स्वपरूपज्ञान शून्य है ॥ ४-८ ॥ इस कारण हे ज्ञान, आनन्द और दयाके सागर! जीव कैसे उत्तम शिव पदवीको प्राप्त करके जीवन्मुक्त कहा सकता है ? ॥ ९ ॥ हे गुरो ! जीवके तीनों शरीर रहते हुए जीवन्मुक्त महात्मा कैसे शरीरातीत हो सकते हैं। चतुर्दश भुवन और पञ्चकोशसे सम्बन्धयुक्त रहने पर भी और उनका प्रभाव बना रहने पर भी जीवन्मुक्त कैसे मुक्तिपदको प्राप्त कर सकते हैं। आपकी अघटनघटनापटीयसी प्रकृति अपने तीनों गुणोंसे सब जीवोंको मोहित करती रहती है अहो ! तौ भी जीवन्मुक्त कैसे गुणातीत

भवत्तो व्यतिरिक्तं स्याद्यत्किञ्चिद्विश्वगोलके ।
तत्सर्वं वर्त्तते नूनं कर्म्माधीनं न संशयः ॥ १४ ॥
धर्म्माधर्म्मसुसम्बन्धरहितं नैव चास्त्यहो ।
जीवन्मुक्तो महात्माऽतो दुर्दमं कर्म्मबन्धनम् ॥ १५ ॥
धर्म्माधर्म्मसुसम्बन्धं छित्त्वा च क्षमते कथम् ।
स्थूलादिदेहसत्त्वेऽपि गन्तुं ब्रह्मस्वरूपताम् ॥ १६ ॥
भवानपि यदा भूमाववतीर्णः कदाचन ।
कर्म्माद्यायत्ततामाप्तो भवत्येवाक्षिगोचरः ॥ १७ ॥
ज्ञानिनस्तर्हि ते भक्ता जीवन्मुक्ताः कृपानिधे ! ।
शक्नुयुः कथमत्येतुं कर्म्मप्रभृतिबन्धनम् ॥ १८ ॥
एवञ्च त्तेऽवतारेषु ज्ञानिभक्तेषु च प्रभो ! ।
जीवनमुक्तेषु को भेदो वर्त्तते भक्तवत्सल ! ॥ १९ ॥
एवं विधैश्च नश्चित्तं शङ्कासङ्घैर्विलोड़ितम् ।
तस्मात्सर्वं समाधाय शान्तिं तस्मिन् प्रयच्छ नः ॥२०॥

पदवीको प्राप्त कर सक्ते हैं ॥ १०-१३ ॥ आपके अतिरिक्त विश्वमें सब कुछ कर्म्माधीन है और धर्म्माधर्म्मसवन्धसे रहित नहीं है अतः जीवन्मुक्त महात्मा कैसे अदमनीय कर्म्मबन्धन और धर्म्माधर्म्मके सम्बन्धसे रहित होकर स्थूलादि शरीर रहते हुए भी ब्रम्हीभूत होनेमें समर्थ होते हैं ॥ १४-१६ ॥ जब आप भी कभी कभी अवतार धारण करके कर्म्मादि के अधीन दिखाई पड़ते हैं तो हे कृपानिधान ! आपके ज्ञानीभक्त जीवन्मुक्तगण कैसे इन सब कर्मादि बन्धनसे अतीत हो सक्ते हैं ॥ १७-१८ ॥ यदि ऐसा होतो हे भक्तवत्सल ! आपके अवतारोंमें और आपके ज्ञानी भक्त जीवन्मुक्तोंमें भेद क्या है ? ॥ १९ ॥ इस प्रकारकी शङ्काओंसे हमारे अन्तःकरण आलोडित होरहे हैं इसलिये हमारी शङ्काओंका

वयं येन कृतार्थत्वं सद्गुरो ! सँल्लभेमहि ।
मनो येन मिलिन्दो नो भवेत्तव पदाम्बुजे ॥ २१ ॥

सदाशिव उवाच ॥ २२ ॥

उत्पत्तिश्च विनाशश्च भूतानामागतिं गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्याश्च स ज्ञेयो भगवानिति ॥ २३ ॥
भगवच्छब्दवाच्यः स्यामेतैरेवगुणैरहम् ।
ते सर्व्वे स्म प्रकाशन्ते गुणा भागवते ध्रुवम् ॥ २४ ॥
अतो भागवतस्येह देहिनोऽपि हि तिष्ठतः ।
अहो भगवता सार्द्धं कश्चिद्भेदो न विद्यते ॥ २५ ॥
यदा हि ज्ञानिनो भक्ताः सम्प्राप्ता मत्स्वरूपताम् ।
त्रिभावात्मकरूपस्य सगुणस्य रहस्यकम् ॥ २६ ॥
निर्गुणस्यापि ज्ञात्वैव मद्युक्ता भवितुं सदा ।
शक्नुवन्ति तदा सृष्टेरुत्पत्तिप्रलयौ ध्रुवम् ॥ २७ ॥

समाधान करके हमें कृतार्थ कीजिये जिससे हमारा मन भ्रमर जैसा आपके चरणकमलोंमें लग जाय ॥ २०-२१ ॥

श्रीसदाशिव बोले ॥ २२ ॥

हे पितरों ! जो उत्पति और विनाशको, जीवोंकी आगति और गतिको एवं विद्या और अविद्याको जानते हों उन्हींको भगवान् जानो ॥ २३ ॥ जिन गुणोंसे मैं भगवान् शब्दवाच्य हूँ वे सब गुण भागवतमें अवश्य प्रकाशित हो जाते हैं ॥२४-२५॥ इसलिये भगवान् और भागवतमें कोई भी भेद नहीं है। अतः जब मेरे ज्ञानीभक्त मेरे स्वरूपमें पहुंचकर मेरे त्रिभावमय सगुण निर्गुण रूपका रहस्य जानकर सब समय मुझमेंही युक्त रहनेमें समर्थ होते हैं उस समय जगत्के उत्पत्ति और विनाश उनकी दृष्टिसे अतीत नहीं होसक्ते। आत्मदर्शी महामान्य महापुरुष तब जीवप्रवाहकी

अस्येतुं नार्हतस्तेषां दृष्टिमार्गं कथञ्चन।
महात्मानो महामान्यास्ते तदा स्वात्मदर्शिनः ॥ २८ ॥
नूनं जीवप्रवाहस्य समुत्पत्तिश्च सर्वतः।
चतुर्धाभूतसङ्घस्य प्रत्यक्षीकुर्वते गतिम् ॥ २९ ॥
ज्ञानिभक्तास्तदा ते च प्राप्य मत्प्रकृतेः कृपाम्।
विद्याऽविद्यास्वरूपे द्वे तस्या दृष्ट्वा मुहुर्मुहुः ॥३०॥
स्वयमेव प्रजायन्ते प्रकृतिस्थाः स्वधाभुजः ! ।
नास्ति कोऽप्यत्र सन्देहः सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३१॥
तस्मिन् काले च ते भक्ता आत्मज्ञानाब्धिपारगाः।
मत्सायुज्यं समापन्ना मद्रूपाः स्युः सुनिश्चितम् ॥ ३२ ॥
यदा मे ज्ञानिनो भक्ताः संविदन्तीह मामलम्।
ब्रह्मणोरुभयोरेव कार्य्यकारणरूपयोः ॥ ३३ ॥
तदैक्यं जायते तेषां ध्रुवमेवान्तरात्मनि।
ब्रह्मरूपा भवन्त्येव तेऽतो नैवात्र संशयः ॥ ३४ ॥
सर्व्वेषु प्राणिपुञ्जेषु येषामुत्पद्यते ननु।
ब्रह्मबुद्धिर्महात्मानो जीवन्मुक्ता भवन्ति ते ॥ ३५ ॥

उत्पत्ति और चतुर्विध भूतसङ्घकी गतिको सर्वथा प्रत्यक्ष करते हैं और हे पितरो ! तव वे ज्ञानीभक्त मेरी प्रकृतिकी कृपाको पाकर उसके विद्या और अविद्या दोनों रूपोंका वार वार दर्शन करके प्रकृतिस्थ हो जाते हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं, मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ २६-३१ ॥ उस समय वे आत्मज्ञानी भक्त मत्सायुज्य को प्राप्त करके मेरे ही रूप वन जाते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे ज्ञानीभक्त जव मुझको भलीभांति जान लेते हैं तो कार्य्यब्रम्ह और कारणब्रम्हकी एकता उनके अन्तःकरणमें हो जानेसे वे ब्रम्ह-रूपही हो जाते हैं ॥ ३३-३४ ॥ जिनमें सब प्राणीमात्रों पर ब्रम्हबुद्धि

अपरोक्षं ध्रुवं येषां ब्रह्मज्ञानं प्रजायते ।
ते महापुरुषा लोके जीवन्मुक्ता न संशयः ॥ ३६ ॥
देहोऽस्मि पुरुषश्चास्मि शूद्रोऽस्मि ब्राह्मणोऽस्मि च ।
यथेत्थं दृढविश्वासस्तथैव पितृपुङ्गवाः ! ॥ ३७ ॥
नाहं देहो न पुरुषो न शूद्रो ब्राह्मणो न च ।
निजस्वरूपे किन्त्वस्मि सच्चिदानन्दरूपकः ॥३८॥
प्रकाशरूपः सर्वान्तर्य्यामी सर्व्वात्मको विभुः ।
अस्म्यहं सर्व्वथा नूनं चिदाकाशस्वरूपकः ॥ ३९ ॥
निश्चयो दृढ एवं योऽपरोक्षज्ञानमस्ति तत् ।
बोद्धव्यमेतत् पितरोऽपरोक्षज्ञानलक्षणम् ॥ ४० ॥
"अहं ब्रह्मास्मि" इत्येवापरोक्षज्ञानयोगतः ।
सर्वकर्म्मावलीबन्धनिवृत्तिर्जायते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥
प्रारब्धं सञ्चितं कल्याः ! आगामीतिप्रभेदतः ।
प्रोच्यते त्रिविधं कर्म्म कर्म्मतत्त्वविशारदैः ॥ ४२ ॥

उत्पन्न हुई है वे महात्मा जीवन्मुक्त हैं ॥ ३५ ॥ जिनको अपरोक्षरूपसे ब्रम्हज्ञान उत्पन्न हुआ है वे महापुरुष संसारमें जीवन्मुक्त हैं ॥३६॥ जैसे मैं देह हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं ब्राम्हण हूँ मैं शूद्र हूँ; इस प्रकारसे दृढ़ निश्चय होता है वैसे ही मैं देह नहीं हूँ, न पुरुष हूँ, न ब्राम्हण हूं, न शूद्र हूं किन्तु अपने स्वरूपमें सत्यज्ञानानन्द (सच्चिदानन्द) स्वरूप, प्रकाशरूप, सर्व्वान्तिर्यामी, सर्वातमा, विभु और चिदाकाशरूप हूं ऐसा दृढ़ निश्चय होना अपरोक्ष ज्ञान कहा जाता है, हे पितृगण ! इसको अपरोक्ष ज्ञानका लक्षण समझो ॥ ३७-४० ॥ "मैं ब्रम्ह ही हूं" इस प्रकारके अपरोक्षज्ञानसे सब कर्म्मबन्धनोंकी निश्चय निवृत्ति हो जाती है ॥ ४१ ॥ हे पितृगण ! सञ्चित प्रारब्ध और आगामि ये तीन प्रकारके कर्म्म कर्म्मतत्त्वज्ञोंने कहे हैं ॥ ४२ ॥ जिनका

अनन्तकोटिजन्मौघेऽभुक्तानां कृतकर्म्मणाम् ।
नूनं संस्कारभूतं यद्बीजवत्कारणान्वयि ॥ ४३ ॥
अस्ति पूर्वार्ज्जितं कर्म्मजातं तत्कर्म्म सञ्चितम् ।
जनकं स्थूलदेहस्य देहेऽस्मिन्नेव च प्रदम् ॥ ४४ ॥
सुखदुःखादिभोगानामास्ते पूर्वार्ज्जितश्च यत् ।
प्रारब्धं प्रोच्यते कर्म्म तदेवाहो स्वधाभुजः ! ॥ ४५ ॥
जीवद्देहकृतं कर्म्म पापपुण्यात्मकं किल ।
आस्ते यन्नूतनं कर्म्म तदागामि प्रचक्ष्यते ॥ ४६ ॥
ब्रह्मैवाऽस्मीत्यहं कतयाः ! निश्चयात्मकताजुषा ।
तत्र ज्ञानाग्निना कर्म्म सञ्चितं दह्यते ध्रुवम् ॥ ४७ ॥
संस्कारात्मकवीजौघ आस्ते सञ्चितकर्म्मणाम् ।
चित्ताकाशेषु सर्वेषां प्राणिनां निहितो ननु ॥ ४८ ॥
यदा ज्ञानिमहात्मनोऽपरोक्षज्ञानयोगतः ।
पञ्चकोशा अहं नैव तेभ्योऽतीतो ह्यसंशयम् ॥ ४९ ॥

भोग उत्पन्न नहीं हुआ है और जो अनन्त कोटि जन्मोंमें किये हुए कर्म्मोंके संस्कारभूत हैं एवं वीजवत् कारणरूप जो पूर्व्वार्जित कर्म्म हैं वे सञ्चितकर्म्म कहते हैं। स्थूलशरीरके उत्पादक अर्थात् कारण और इसी देह में सुखदुःखादि भोगोंको देनेवाले जो पूर्व्वजन्मार्जित कर्म्म हैं वे ही प्रारव्ध कर्म्म कहाते हैं ॥ ४३-४५ ॥ जीवके देहसे किये हुए जो पापपुण्यात्मक नये कर्म्म हैं वे अगामीकर्म्म कहे जाते हैं ॥ ४६ ॥ इन तीन प्रकारके कर्म्मोंमेंसे ज्ञानीके सञ्चितकर्म्म "ब्रम्ह ही मैं हूं" ऐसे निश्चयात्मक ज्ञानकी अग्निसे जल जाते हैं ॥ ४७ ॥ सञ्चितकर्म्मसमूहके संस्काररूप वीज सब प्राणियोंके चित्ताकाशक जमा रहते हैं, जब ज्ञानी महापुरुष अपरोक्ष ज्ञानसे यह जान जाते हैं कि मैं पञ्चकोश नहीं हूं, मैं पञ्चकोशोंसे अतीत और उनमें

आत्मा तद्द्रष्टृरूपोऽस्मि शुद्धो बुद्धश्च शाश्वतः ।
इत्थमेव विदन्तीह पञ्चकोशस्थितेषु वै ॥ ५० ॥
सञ्चिताः कर्म्मसंस्काराश्चित्ताकाशेषु संस्थिताः ।
तिष्ठन्तोऽपि हि तेष्वेव न मुक्तान् बहुमीशते ॥५१॥
ज्ञानिनामिह मुक्तानां प्राणिनां पितृपुङ्गवाः !
प्रारब्धकर्म्मणां नाशो भोगादेव प्रजायते ॥ ५२ ॥
यथा कुलालो दण्डेन चक्रं सङ्घूर्ण्य घूर्णितम् ।
तत्त्यक्त्वा कुरुते हस्तौ दण्डञ्चैव पृथक् ततः ॥ ५३ ॥
पृथग्भूतेऽपि कौलाले चालके शक्तिसञ्चये ।
तच्छक्तिजेन वेगेन कौलालं तत्तु चक्रकम् ॥५४॥
तावद्घूर्णायमानं स्याद्यावद्वेगो न शाम्यति ।
यावन्नैवान्यवस्तूनां योगो वा तत्र जायते ॥ ५५ ॥
तत्त्वज्ञानिमहात्मानस्तात्त्विकज्ञानतस्तथा ।
प्राप्तवन्तोऽपि भो विज्ञाः ! जीवन्मुक्तदशामलम् ॥५६॥

द्रष्टा शुद्ध बुद्ध और सनातन आत्मा हूं तव पञ्चकोशमें स्थित चित्ताकाशमें रहनेवाले सञ्चितकर्म्मसंस्कार भी पञ्चकोशमें ही रहजाते हैं और उन मुक्तात्माओंको बन्धन नहीं कर सकते ॥ ४८–५१ ॥ ज्ञानी मुक्त पुरुषोंके प्रारब्धकर्म्मोंका क्षय भोगसे ही होता है ॥ ५२ ॥ जिस प्रकार कुम्हार अपने कुलालचक्रको लकड़ीसे चलाकर पीछे अपने हाथ और लकड़ीको अलग कर लेता है, तत्पश्चात् कुम्हारके अपने चलाने की शक्तिको अलग करलेने पर भी वह कुलालचक्र पहली प्रयोग की हुई शक्तिसे अपने आपही तवतक घूमता रहता है जवतक वह शक्ति क्षय न हो जाय, या अन्य वस्तुओंका उसमें योग (स्पर्श) न होजाय; उसी प्रकार हे विज्ञो ! तत्वज्ञानी महात्मा तत्वज्ञान द्वारा जीवन्मुक्त दशाको प्राप्त हो जाने पर भी अपने स्थूल शरीर-उत्पन्नकारी प्रारब्ध भोग

यावत्स्थूलशरीरं वै भोगं प्रारब्धकर्म्मणाम् ।
भुञ्जाना आसते तावद्भोगात्तेषां क्षयो यतः ॥ ५७ ॥
यथा कुलालचक्रस्य कुम्भकारेण कोऽप्यहो ।
सार्द्धं घूर्णायमानस्य सम्बन्धो नास्ति तत्क्षणम् ॥५८॥
निःसङ्गरूपतो भोगात्तत्त्वज्ञे भोगजास्तथा ।
संस्काराः क्रियमाणानां जायन्ते नैव कर्म्मणाम् ॥५९॥
ज्ञानिनां नैव सम्बन्धः पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
विद्यतेऽसंशयं कव्याः ! सार्द्धमागामिकर्म्मभिः ॥ ६०॥
अतस्तान्यपि नश्यन्ति ज्ञानयोगेन सुव्रताः ! ।
सर्वाण्यागामिकर्म्माणि नात्र कार्य्या विचारणा ॥६१॥
पञ्चकोशा अहं नैव तेषां द्रष्टास्मि केवलम् ।
यदा त्वेवं महात्मानस्तत्त्वज्ञा ज्ञानयोगतः ॥ ६२ ॥
विदन्ति हि तदा पञ्चकोशरूपवपुःकृता ।
बध्नीयान्नूतना मुक्तान्नागामिकर्म्मसन्ततिः ॥ ६३ ॥
सञ्चितागामिकर्म्माणि ज्ञानिनां पितृपुङ्गवाः !
ब्रह्माण्डप्रकृतिं नूनमाश्रयन्ते न संशयः ॥ ६४ ॥

शरीरके अन्तपर्य्यन्त भोगसे रहते हैं क्योंकि प्रारब्धकर्म्मका केवल भोगसे ही क्षय होता है ॥ ५३–५७ ॥ जिस प्रकार घूमते हुए कुलाल-चक्रका उस समय कुलालके साथ सम्बन्ध नहीं रहता है उसी तरह निःसंगरूपसे भोग होनेके कारण उन कर्म्मोंके भोगसे ज्ञानीमें क्रियमाण कर्म्मसंस्कारों की उत्पत्ति नहीं होती है, आगामि कर्म्मोंसे ज्ञानियोंका कमलदलगत जलके समान सम्बन्धही नहीं है इस कारण वे भी ज्ञान के द्वारा नाशको प्राप्त होते जाते हैं ॥ ५८-६१ ॥ इस प्रकार जब तत्त्वज्ञानी महापुरुष तत्त्वज्ञानके द्वारा यह समझजाते हैं कि मैं पञ्चकोश नहीं हूं मैं पञ्चकोशका द्रष्टा हूं तो पञ्चकोषशरूपी शरीरका किया हुआ नवीन आगामी कर्मसमूह मुक्तात्माओंको बांध नहीं सक्ता ॥ ६२--६३ ॥ हे पितृवरो ! ज्ञानीके सञ्चित कर्म्म और आगामी कर्म्म निस्सन्देह ब्रम्हाण्ड

मुक्तात्मानो न बध्यन्ते सञ्चितागामिकर्म्मभिः ।
इत्ययं निश्चयो जात उक्तविज्ञानतो ध्रुवम् ॥ ६५ ॥
कर्म्मणां वीजरूपोऽस्ति संस्कारो यत्र सञ्चितः ।
कर्म्मतश्च फलोत्पत्तेरवश्यं तत्र सम्भवः ॥ ६६ ॥
सञ्चितागामिकर्म्माणि यतो मुक्तमहात्मनाम् ।
नैव स्पृशन्ति मुक्ताँस्तान् ब्रह्माण्डप्रकृतिं ह्यतः ॥ ६७ ॥
आश्रयन्ते च भुज्यन्ते समष्ट्यात्मकतो ध्रुवम् ।
ब्रह्माण्डे शोभने यत्र मुक्तात्माऽसावजायत ॥ ६८ ॥
ब्रह्माण्डस्य नु तस्यैव तानि कर्म्माणि निश्चितम् ।
समष्ट्यात्मकप्रारब्धे सम्मिलन्ति स्वधाभुजः ! ॥ ६९ ॥
समष्टि-कर्म्मभिस्तैर्हि तद्ब्रह्माण्डस्य भूतिदाः ! ।
समष्टिसुखदुःखानि प्राप्यन्ते प्राणिभिर्ध्रुवम् ॥ ७० ॥
सत्यत्रेताद्वापराणां कलेश्चैव समुद्भवे ।
सहायकानि जायन्ते काले तानि भविष्यति ॥ ७१ ॥

प्रकृति को आश्रय करते हैं ॥ ६४ ॥ अतः पूर्वकथित विज्ञान के अनुसार यह निश्चय हुआ कि मुक्तात्माओं के आगामी और सञ्चित कर्म्म उनको पुनः बन्धन नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥ जहाँ कर्म्म बीजरूप संस्कार है वहाँ कर्म्मसे फलोत्पत्ति होना अवश्य सम्भव है इस कारण मुक्तात्माके आगामी और सञ्चित कर्म्म मुक्तात्माको स्पर्श नहीं कर सकते वे ब्रम्हाण्ड प्रकृतिको आश्रय करते हैं । उस ब्रम्हाण्डमें समष्टिरूपसे वे कर्म्म भोगे जाते हैं; अर्थात जिस पवित्र ब्रम्हाण्ड में वह मुक्तात्मा उत्पन्न हुआ था उसी ब्रम्हाण्डके समष्टि प्रारब्धमें वे कर्म्म सम्मिलित हो जाते हैं ॥ ६६–६९ ॥ उन कर्म्मोंके द्वारा उस ब्रम्हाण्डके समष्टि जीवोंको समष्टि सुख दुःख प्राप्त होता है ॥ ७० ॥ एवं भविष्यत् कालमें सत्य, त्रेता, द्वापर, कलियुग आदि कालके

ज्ञानिनां मम भक्तानां भोगो भवति कर्म्मणाम्।
अन्येनापि प्रकारेण यथाग्रे वो ब्रवीम्यहम् ॥ ७२ ॥
ज्ञानिनो ये भजन्तीह नितरामर्च्चयन्ति च।
ज्ञानिभिर्विहितः पुण्य-कर्म्मांशो याति तान्प्रति ॥७३॥
दुःखप्रदानं कुर्वन्ति निन्दन्ति ज्ञानिनश्च ये।
ज्ञानिसम्पादितः पाप-कर्म्मांशस्तांस्तु गच्छति ॥ ७४ ॥
मुच्यन्ते ज्ञानिनो ह्येवं निखिलैः कर्म्मबन्धनैः।
निष्कामा भाग्यवन्तस्ते विचरन्ति महीतले ॥ ७५ ॥
संसारापारपाथोधिमुत्तीर्य्यात्मविदो जनाः।
ब्रह्मानन्दसुसन्दोहमत्रैवास्वादयन्त्यलम् ॥ ७६ ॥
तरन्त्यात्मविदो भक्ता निश्चितं शोकसागरम्।
सर्वभूतेषु गूढोऽस्ति देव एको न संशयः ॥ ७७ ॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिरित्यादिशास्त्रसम्मतेः।
जीवन्मुक्ता महात्मानः साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ७८ ॥

उत्पन्न होनेमें सहायक होते है ॥ ७१ ॥ हे पितृगण ! मेरे ज्ञानी-भक्तके कर्म्मोंका प्रकारान्तरसे भोग ऐसा भी होता है, जैसा आप लोगों से मैं कहता हूं कि ज्ञानीकी जो सेवा ओर पूजा करते हैं उनको ग्यानी के किये हुए पुण्यकर्म्मो का अंश भोग करना पड़ता है और जो ज्ञानीकी निन्दा करते हैं और उनको दुःख देते हैं उनको ज्ञानीके किये हुए पापकर्म्मोंका अंश भोग करना पड़ता है इस प्रकार से ग्यानी सब कर्म्मोंकि बन्धनोंसे मुक्त हो जाते हैं और वे भाग्यवान् निष्काम होकर पृथिवी पर विचरते हैं ॥ ७२-७५ ॥ आत्मग्यानी संसारसमुद्रको तर कर यहीं ब्रभ्हानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ शास्त्रोंमें कहा है कि "आत्मग्यानी सब शोकोंको तर जाता है" "एकही आत्मदेव सब भूतोंमें व्यापक हैं" "आत्मग्यान से हृदय की ग्रन्थि खल जाती है" इसलिये जीवन्मुक्त महापुरुष साक्षात्

चिज्जड़ग्रन्थिसम्बन्धो योऽभूज्जीवदशोद्भवे ।
छिन्नो मुक्तदशायां स भवेज्जीवः शिवोह्यतः ॥ ७९ ॥
ब्रम्हेशकोटिभेदेन जीवन्मुक्तो द्विधा मतः ।
प्रारब्धकर्म्मणां तत्र जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ॥ ८० ॥
वैचित्र्यमेव हेतुः स्यात्प्रभेदे द्विविधे ध्रुवम् ।
ब्रम्हकोटिं समापन्ना जीवन्मुक्ता भवन्त्यहो ॥ ८१ ॥
आत्मारामाः सदा मूका जगत्सम्बन्धवर्ज्जिताः ।
ईशकोटिं श्रिता ये च जीवन्मुक्ताः स्ववेदिनः ॥ ८२ ॥
त ईशप्रतिमाः सन्तो भगवत्कार्य्यरूपतः ।
संरक्ता विश्वकल्याणे सन्तिष्ठन्ते महीतले ॥ ८३ ॥
विश्वमेवंविधैरेव ह्येकमात्रं स्वधाभुजः ! ।
भवन्त्युपकृतं धन्यं जीवन्मुक्तैर्महात्मभिः ॥ ८४ ॥
सन्ति भागवता एवं भगवद्रूपिणो ध्रुवम् ।
तेषां सततयुक्तानां मय्येव पितृपुङ्गवाः ! ॥ ८५ ॥

ब्रम्हरूप ही हैं। जीवदशा में जड़ और चेतनकी जो ग्रन्थि वनी थी वह ग्रन्थि मुक्तदशा में खुल जानेसे जीव शिवरूप हो जाता है ॥ ७७ ७९ ॥ जीवन्मुक्त महापुरुष दो श्रेणी के होते हैं; एक ब्रम्हकोटि के जीवन्मुक्त और दूसरे ईसकोटिके जीवन्मुक्त। मुक्तदशामें मुक्तात्मा के अवशेष रहे हुए प्रारब्ध कर्म्मोंकी विचित्रता ही इन दो भेदोंका कारण है। ब्रम्हकोटि के जीवन्मुक्त मूक और आत्माराम होते हैं। जगत्के साथ उनका कोई सम्बन्ध पुनः नहीं रहता है और ईशकोटिके जीवन्मुक्त ईश्वर प्रतिनिधिरूप होकर भगवत्कार्य्यरुपसे जगत्-कल्याणमें रत रहते हैं। केवलमात्र ऐसे ही जीवन्मुक्त महापुरुषोंके उपकारसे उपकृत होकर जगत् धन्य होता है ॥ ८०-८४ ॥ हे पितृ-गण ! इस प्रकारसे भागवतगण भगवद्रूप ही हो जाते हैं। मुझमें

चित्ते सर्वज्ञताबीजं भवत्यारोपितं खलु।
मत्कार्य्यतत्परांस्तांश्च सर्वथा मत्परायणान् ॥ ८६ ॥
देशकालौ न बाधेते कथञ्चित् किल कर्हिचित्।
जीवन्मुक्ता महात्मान ईशकोटिं समाश्रिताः ॥ ८७ ॥
यत्किञ्चनेन संसारे कार्य्यं कुर्वन्ति सन्ततम्।
कार्य्यं ममैव तत्सर्वं कुर्वते पितृपुङ्गवाः ! ॥ ८८ ॥
यतोऽन्तःकरणं तेषां जैवाहङ्कारवर्ज्जितम्।
पूर्य्यते समदर्शित्व-निरासक्तत्वादिभिस्तदा ॥ ८९ ॥
भगवत्कार्य्यबुद्ध्यैव निरीक्ष्यन्ते निरन्तरम्।
सर्वस्मिन् समये ते च परार्थे केवलं रताः ॥ ९० ॥
तज्ज्ञानं सर्वभूतेष्ववरोधशून्यतां गतम्।
अत्रैक्यं खलु संस्थाप्याऽद्वैतभावं प्रपद्यते ॥ ९१ ॥
यदाऽहं ज्ञानिभक्तेषु प्रसीदामि तदैव ते।
जीवन्मुक्तिपदं प्राप्तुं शक्नुवन्ति स्वधाभुजः ! ॥९२॥

ही सदा युक्त रहनेसे सर्व्वज्ञता का बीज उनके अन्तःकरणमें आरोपित हो जाता है। सर्वथा मत्परायण और मेरे कार्य्यमें तत्पर होने से देश और काल उनको किसी प्रकार कभी बाधा नहीं दे सकते। ईशकोटिके जीवन्मुक्त इस संसारमें जो कुछ कार्य्य करते हैं सो मेरा ही कार्य्य करते हैं क्योंकि उस समय उनका अन्तःकरण समदर्शिता और निरासक्तिसे पूर्ण होकर जैव अहङ्कारसे रहित हो जाता है ॥८५-८९॥ तब वे सब अवस्थाओं में भगवान् का काम समझकर केवल परार्थ कार्य्यमें ही निरन्तर रत देख पड़ते हैं ॥ ९० ॥ उनका ज्ञान तब सर्व्वभूतमें अवरोध शून्य होकर सर्व्वभूतोंमें एकता स्थापन करके अद्वैतभावको प्राप्त करता है ॥ ९१ ॥ हे पितृगण ! मैं जब अपने ज्ञानी भक्तों पर प्रसन्न होता हूं तभी वे जीवन्मुक्ति-पदवीको प्राप्त कर सकते हैं।

यदाऽऽर्त्ताऽर्थार्थिजिज्ञासुभक्ता मच्छरणागताः ।
स्युस्तदा प्रकृतिर्मेऽसौ मातृभावं समाश्रिता ॥ ९३ ॥
तेभ्यो वै वाञ्छिताः सिद्धीर्दत्त्वाग्रे सारयेदिमान् ।
सर्वतः सर्वथा कल्याः ! नैव कार्य्योऽत्र विस्मय ॥९४॥
यदा मेऽर्थार्थिनो भक्ताः प्रकृतेर्मे यथार्थतः ।
दृष्ट्वा स्वरूपमस्याः स्युरुपास्तौ सिद्धकामनाः ॥ ९५ ॥
तदा मे प्रकृतिर्नूनं यथा नारी पतिव्रता ।
पत्युः केवलकल्याणानन्दवर्द्धनतत्परा ॥ ९६ ॥
तानेवार्थार्थिनो भक्तांस्तथा विश्वविभूतिदाः ! ।
आभिमुख्येन मे नूनं करोत्यग्रेसरान क्रमात् ॥ ९७ ॥
केवलं ज्ञानिनो भक्ताः स्वज्ञानोपास्तिपूर्त्तितः ।
लीना मत्प्रकृतौ सम्यङ्नूनमासादयन्ति माम् ॥ ९८ ॥
उपास्तेरधिकारस्य त्रिविधस्यैतदेव हि ।
रहस्यं विद्यते कल्याः ! सत्यमेतन्न संशयः ॥ ९९ ॥
पश्यन्तो ज्ञानिनो भक्ता मां सर्वत्रैव सर्वदा ।
दिव्याचारस्य जायन्ते सर्वथैवाधिकारिणः ॥ १०० ॥

मेरे आर्त्त जिज्ञासु और अर्थार्थी भक्त जब मेरे शरणागत होते हैं तब मेरी प्रकृति मातृभाव धारण करके उनको वाञ्छित सिद्धियां प्राप्त कराती हुई मेरी ओर सर्वथा अग्रसर करती है इसमें विस्मय न करना चाहिये ॥ ९२-९४ ॥ जब मेरे अर्थार्थी भक्त मेरी प्रकृति का यथार्थ स्वरूप देखकर उनकी उपासनामें सफलकाम होते हैं तब जिस प्रकार सती स्त्री अपने पतिकी एकमात्र कल्याण और आनन्द प्रदायिनी ही होती हैं उसीप्रकार मेरी प्रकृति उन उत्तम अर्थार्थी भक्तोंको क्रमशः मेरी ओर अग्रसर करती है ॥९५-९७॥ केवल ग्यानी भक्त ही अपने ग्यान और उपासनाकी पूर्णताके प्रभावसे मेरी प्रकृतिमें सम्यक् लय होकर मुझको प्राप्त करते हैं। यही उपासनाके त्रिविध

जीवन्मुक्तिपदस्यैतद्रहस्यं वित्त सत्तमाः ! ।
पुरा यद्वर्णितं कल्याः ! लोककल्याणसम्पदे ॥१०१॥
जीवन्मुक्तिपदाऽऽरूढ़ान् मद्भक्तान् ज्ञानिनो वरान् ।
नालं मे प्रकृतेः सक्तान् कर्त्तुं किमपि वैभवम् ॥ १०२॥
देशकालात्मकाः कर्म्मरूपा अपि विभूतयाः ।
सन्ति मे प्रकृतेर्मुख्यास्तिस्रस्ताभ्योऽपि मामकाः ॥१०३॥
भक्ता भवन्त्यतीता हि जीवन्मुक्ता न संशयः ।
भूयोऽहं व्यासतो वक्ष्ये सावधानैर्निशम्यताम् ॥१०४॥
महाकालश्च कालश्च पिता चैव स्वधाभुजः ! ।
सगुणस्य स्वरूपस्य सन्तीमा मे विभूतयः ॥ १०५ ॥
देशश्च जन्मभूमिश्च माता चैव बुभुत्सवः ! ।
मुख्या मत्प्रकृतेर्नूनमिमाः सन्ति विभूतयः ॥ १०६ ॥
निजान्तःकरणेष्वेव त्रिविधाऽकाशरूपतः ।
सर्वव्यापकदेशोऽयमनुभूयत एव ह ॥ १०७ ॥

अधिकारका रहस्य है। हे पितृगण ! यह सत्य है ॥ ९८-९९॥ ज्ञानी भक्त ही मुझको सदा सब जगहों में देखते हुए दिव्याचारके अधिकारी बन जाते हैं यही जीवन्मुक्ति पदवीका रहस्य है, मैंने लोककल्याणके लिये जिसका वर्णन पहले किया है ॥ १००--१०१ ॥ मेरे श्रेष्ठ जीवन्मुक्तपदवी प्राप्त ग्यानी भक्तों को मेरी प्रकृति का कोई वैभव फंसा नहीं सकता है ॥ १०२॥ काल देश और कर्मरूपी जो मेरी प्रकृतिकी तीन प्रधान विभूतियाँ हैं उनसे भी मेरे जीवन्मुक्त भक्त अतीत हो जाते हैं इनको मैं और विस्तारपूर्वक कहता हूं सुनो ॥ १०३-१०४ ॥ हे जिज्ञासु पितृगण ! महाकाल, काल और पिता ये मेरी सगुणरूपकी विभूतियां हैं और देश, जन्मभूमि एवं माता ये मेरी प्रकृतिकी प्रधान विभूतियां हैं। निज अन्तःकरणमें ही त्रिविध आकाशरूप से सर्वव्यापक देशका अनुभव होता हैं इस कारण निज शरीर भी जीवके लिये

अतोऽपि स्वशरीराणि मन्यन्ते प्राणिनां कृते ।
योगिनः प्रकृतेर्मुख्यविभूत्यात्मकतः स्वतः ॥ १०८ ॥
प्रकृतेः स्पन्दनं यत्स्यात्सम्बन्धाद्देशकालयोः ।
कर्म्म तत्प्रोच्यते विज्ञैर्विसर्गात्मकमेव तत् ॥ १०९ ॥
भूतभावोद्भवकरो विसर्गो विद्यते किल ।
त्रिविधं कथ्यते कर्म्म सहजादिप्रभेदतः ॥ ११० ॥
अपि तेषामनेकांश्च भेदान् कर्म्मविदो विदुः ।
यदा मे ज्ञानिनो भक्ता जीवन्मुक्तिपदं ध्रुवम् ॥१११॥
प्राप्नुवन्ति तदा देश-कालकर्म्माणि तानहो ।
किञ्चिन्नैवापबाधन्ते सत्यं सत्यं ब्रवीमिवः ॥ ११२ ॥
गुणत्रयस्य सम्बन्धादेषां भेदांश्च वर्णये ।
श्रूयन्तां सावधानैस्ते भवद्भिश्च शनैः शनैः ॥ ११३ ॥
विभ्वनिर्वचनीयौ द्वावतिसूक्ष्मौ गुणान्वयात् ।
शक्यौ देशमहाकालौ विज्ञातुं नैव कर्हिचित् ॥ ११४ ॥
किन्तु तौ भावसम्बन्धाज्ज्ञातुं शक्यौ न संशयः ।
जीवन्मुक्ता महात्मानः शक्तितो देशकालयोः ॥ ११५ ॥

मेरी प्रकृतिकी प्रधान विभूतिरूपसे योगिगण मानते हैं ! देश और कालके सम्बन्धसे मेरी प्रकृतिके स्पन्दनको कर्म्म कहते हैं, वह भूतभावोद्भवकर विसर्गरूप है। वह कर्म्म सहजादि रूपसे त्रिविध कहाता है। कर्म्मतत्त्वदर्शियों ने उन तीनोंके भी अनेक भेद कहे हैं। मेरे ज्ञानी भक्त जब जीवन्मुक्त पदवीको प्राप्त कर लेते हैं तो देश; काल और कर्म्म उनको कुछ भी बाधा नहीं दे सकते ॥ १०५ ११२ ॥ त्रिगुणके सम्बन्धसे इनका भेद वर्णन करता हूँ, सुनें । सूक्ष्मातिसूक्ष्म, विभु और और अनिर्वचनीय देश और महाकाल गुणके सम्बन्धसे जाने नहीं जाते परन्तु वे भावके सम्बन्धसे जाने जाते हैं। जीवन्मुक्त महापुरुष ब्रम्हभावकी धारणा

स्वयं धारणयाऽऽत्मानं ब्रह्मभावस्य शुद्धया ।
विमोक्तुं शक्नुवन्तीह नात्रास्ते कोऽपि विस्मयः ॥११६॥
यदा मे प्रकृतेर्धीराः ! त्रैगुण्योपाधिसंयुतः ।
कल्पमन्वन्तरादीनि नानारूपाणि सन्धरन् ॥ १ ७ ॥
चतुर्युगैर्महाकाल ऋतुभिः षड्भिरेव च ।
प्रत्यक्षत्वं गतो लोके जीववर्गेषु सन्ततम् ॥ ११८ ॥
प्रभावं तनुते स्वीयं जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।
अत्येति निर्मला बुद्धिस्तथाप्युक्तप्रभावतः ॥ ११९ ॥
तथैव प्रकृतेर्नूनं गुणान् देशो यदा धरन् ।
राशिनक्षत्रसूर्य्यादिग्रहोपग्रहमुख्यकान् ॥ १२० ॥
नानारूपोच्चयान् धत्वा मातृभूरूपतस्ततः ।
पार्वत्यपर्वतप्रायमरुदेशोषरादिभिः ॥ १२१ ॥
सजलैर्जलजैश्चापि षड्पैरुक्तनामकैः ।
ब्राम्हणादिचतुर्वर्णरूपभूभेदतोऽथवा ॥ १२२ ॥
जीवानासक्तिपाशेषु निवध्नाति तथाप्यहो ।
जीवन्मुक्तगणस्येह बुद्धिरव्यभिचारिणी ॥ १२३ ॥

द्वारा देश और कालकी शक्तिसे अपने आपको मुक्त कर लेते हैं इसमें विस्मय नहीं है ॥ ११२-११६ ॥ महाकाल जब मेरी प्रकृतिके त्रिगुण-उपाधिसे युक्त होकर कल्प मन्वन्तर आदि अनेक रूपोंको धारण करके अन्तमें चार युग और छः ऋतुरूपसे प्रत्यक्ष होकर जीव पर प्रभाव डालता है किन्तु तौभी जीवन्मुक्त महात्माओंकी निर्मल बुद्धि उक्त प्रभावोंसे भी अतीत होजाती है ॥ ११७-११९ ॥ उसी प्रकार जब देश प्रकृतिगुणोंको धारण करके राशि, नक्षत्र, सूर्य्य, ग्रह और उपग्रह आदि अनेक रूपोंको धारण करता हुआ अन्तमें मातृभूमिरुपसे पार्वत्य, पर्वतप्राय, मरु, ऊषर, सजल और जलज छः रूपसे अथवा ब्राम्हणादि चतुर्वर्णरूपी भूमिभेदसे जीवको आसक्तिमें बांधता है, वैसा होने पर भी जीवन्मुक्त महात्माकी अव्यभिचारिणी बुद्धि

नैवापतति कुत्रापि सुदृढे तस्य बन्धने ।
जीवन्मुक्तस्थितिर्यस्मात्पद्मपत्रमिवाम्भसि ॥ १२४ ॥
पितृजे सत्यापि स्थूले गुणाधारे वपुष्यहो ।
सर्वेषु देशकालेषु जीवन्मुक्तात्मवेदिनाम् ॥ १२५ ॥
प्रतिभा निर्मलोक्तस्य स्थूलदेहस्य तैर्गुणैः ।
मुह्यते पितरो नैव सत्यमेतद्‌ब्रवीमि वः ॥ १२६ ॥
सन्ततं मयि युक्तानां जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।
जायन्ते सर्वकर्म्माणि तदर्थं भ्रष्टबीजवत् ॥ १२७ ॥
आयस्कान्तगिरेः पोते गच्छत्येवान्तिकं यथा ।
पृथगभवन्ति लौहानि कीलकान्यखिलान्यलम् ॥१२८॥
तस्मिन्नेव भवन्त्याशु संलग्नानि धराधरे ।
सपोतश्च क्षणे तस्मिंस्तत्रैवाब्धौ निमज्जति ॥ १२९ ॥
तथैव मयि युक्तानां जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।
श्रयन्तेऽखिलकर्म्माणि ब्रह्माण्डाकाशमेव वै ॥ १३० ॥

उसके सुदृढ़ बन्धनमें नहीं पड़ती है क्योंकि जीवन्मुक्तोंकी स्थिति जलमें कमलपत्र के समान होती है ॥१२०-१२४॥ और माता पितासे उपत्न्न स्थूल शरीर गुणोंका आधार होनेपर भी जीवन्मुक्तकी प्रतिभा सब देश और कालमें निर्मल रहकर उक्त स्थूल शरीरके गुणोंसे मोहित नहीं होती है, यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ १२५-१२६ ॥ हे ! पितृगण ! मुझमें सदा युक्त होनेसे जीवन्मुक्त महात्माओंके सब कर्म्म उनके लिये भ्रष्ट बीजवत् हो जाते हैं ॥१२७॥ जिसप्रकार चूम्बकके पर्वतके निकट होते ही पोतके शरीरकी सब लोहेकी कीलें पोतसे खुलकर उस पर्वत में जा मिलती हैं और वह पोत समुद्रमग्न हो जाता है; उसी प्रकार मुझमें युक्त जीवन्मुक्तोंके सब कर्म्म ब्रम्हाडाकाशको आश्रय कर

वारिबिन्दुरिवाकाशात्पतितस्ते महार्णवे ।
जीवन्मुक्ता महात्मानो लयं गच्छन्ति मय्यहो ॥१३१॥
एकैकस्य गुणस्याथ या वृत्तिद्वयरूपतः ।
आहारो मैथुनं निद्रा भयं ज्ञानं सुखैषणा ॥१३२॥
इमा षड्वृत्तयः सन्त्यास्थावराज्जीवसङ्घतः ।
देवतोन्नतसृष्ट्यन्तं विद्यमानाः समानतः ॥ १३३ ॥
कर्म्मजालेषु तान् सर्व्वानाबद्धान् कुर्वते च ताः ।
स्थावरान् जंगमाञ्जीवान् देवमर्त्यादिकान् ध्रुवम् ॥१३४॥
परन्तु जीवन्मुक्तेषु नूनं स्वाभाविकास्वपि ।
सतीष्वपि किलैतासु त्यजन्ति स्वगुणान् हि ताः॥१३५॥
निद्राऽहारस्वरूपिण्यस्तामसिक्यो हि वृत्तयः ।
स्थूलदेहाश्रयेणैषां तिष्ठेयुर्नष्टवासनाः ॥ १३६ ॥
भयमैथुनरूपिण्यो जीवन्मुक्तौघवृत्तयः ।
राजसिक्यो विलीयन्ते स्वीयेषु कारणेष्वलम् ॥ १३७॥
सुखेच्छाज्ञानरूपिण्यस्तेषां सात्त्विकवृत्तयः ।
समं विश्वेन तादात्म्यभाजः सत्यः स्वधाभुजः ! ॥१३८॥

लेते हैं और जीवन्मुक्त आकाशपतित वारि बिन्दुके समान मुझमें मिल जाते हैं ॥१२८-२३१॥ जीवमें जो एक एक गुणकी दो दो वृत्ति रुपसे आहार, निद्रा, भय, मैथुन, ज्ञान और सुखेच्छा, ये छः वृत्तियां स्थावर आदि जीव से लेकर देवता आदि उन्नत सृष्टिमें भी समान रुप से विद्यमान रहकर कर्म्मजालमें उनको आवद्ध रखती हैं; परन्तु हे विज्ञवरो ! जीवन्मुक्त में ये स्वाभाविक छः वृत्तियां रहने पर भी अपने स्वाभाविक गुणोंको परित्याग कर देती हैं। आहार और निद्रा-रूपी तामसिक वृत्तियां केवल उनके स्थूल शरीरके आश्रयसे वासना-शून्य होकर जीवित रहती हैं। जीवन्मुक्तोंकी भय और मैथुनरूपी राजसिक वृत्तियां अपने स्वकारणमें लय हो जाती हैं और उनकी ज्ञान और सुखेच्छारूपी सात्त्विक वृत्तियां जगत्के साथ तदाकाररूप धारण

आभिमुख्येन मे नित्यं प्रवहन्ते न संशयः ।
एवं मे ज्ञानिनो भक्ताः शक्नुवन्ति जगद्गुरोः ॥१३९॥
जगतो रक्षकस्यापि पदमाप्तुमसंशयम् ।
इति वो ज्ञानमाख्यातं श्रूयतां वः पुनर्ब्रुवे ॥ १४० ॥
यद्यपि स्वेच्छयैवाहं स्वशक्तत्र्यात्मककर्म्मणः ।
स्वानुशासनरूपाया धर्म्माधर्म्मव्यवस्थितेः ॥ १४१ ॥
निघ्नताश्चोररीकृत्य जगत्कल्याणहेतवे ।
यदा कदाचिद्विश्वस्मिन्नवतीर्णो भवाम्यहो ॥ १४२ ॥
जीवन्मुक्तपदप्राप्तान् किन्तु भक्तगणानहम् ।
सर्वथा कर्म्मभिर्मुक्तान् विदधे पितरोध्रुवम् ॥ १४३ ॥
नानाविधाश्च जायन्तेऽवतारा मे युगे युगे ।
समष्टिकर्म्मसादेते सम्पद्यन्ते न संशयः ॥१४४॥
प्राधान्यं त्रिविधानां मे शक्तीनामेव जायते ।
मदवतारपुञ्जेषु तेऽतो मच्छक्त्यपेक्षकाः ॥ १४५ ॥
अपेक्षते तु मच्छक्तीर्जीवन्मुक्तेषु कोऽपि न ।
सर्व्वमुक्ता हि जायन्ते जीवन्मुक्ता न संशयः ॥१४६॥

करके मेरी ओर सदा प्रवाहित होती हैं। इसप्रकारसे मेरे ज्ञानी भक्त जगद्रक्षक और जगद्गुरु पदवीको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। इस प्रकारका ज्ञान कहा गया और भी आपलोगोंसे कहता हूँ सुनो ॥१३९–१४०॥ यद्यपि मैं अपनी इच्छा से ही अपनी ही शक्तिरूपी कर्म और अपने ही अनुशासन रूपी धर्म्माधर्म्म की अधीनता स्वीकार करके इस जगत्में इसके कल्याण के लिये जब कभी अवतार धारण करता हूं परन्तु हे पितृगण ! जीवन्मुक्तिपदवी प्राप्त भक्तगणको मैं सबप्रकारसे कर्म्मसे मुक्त कर देता हूँ ॥ १४१–१४३ ॥ युग युगमें मेरे अवतार अनेक प्रकारके होते हैं वे सब समष्टिकर्म्माधीन होते हैं। मेरे अवतारों में मेरी त्रिविध शक्तिकीही प्रधानता रहती है इस कारण वे मेरी शक्ति सापेक्ष हैं परन्तु जीवन्मुक्तगण में से कोई भी मेरी शक्तिकी अपेक्षा नहीं

आत्मज्ञानं यदासाद्य ज्ञानिभक्तगणो मम।
लभते पितरो नूनं जीवन्मुक्तिपदं परम् ॥ १४७ ॥
आविर्भूतेस्तस्य वेदे दशात्रैविध्यमीरितम्।
वेदान्तप्रतिपाद्यस्य सच्चिदानन्दरूपिणः ॥ १४८ ॥
स्वस्वरूपस्य सँल्लाब्धावपरोक्षानुभूतितः।
सत्यां स्वतो विमुच्यन्ते जीवाः संसारवन्धनात् ॥१४९॥
तेषां प्रारब्धप्रावल्याद्भ्रमत्कौलालचक्रवत्।
तच्चित्तस्य तदा किन्तु विक्षेपो नैव नश्यति ॥ १५० ॥
तद्व्युत्थानदशा नूनं वाहुल्येन हि जायते।
किन्तु ते भाग्यवन्तो मे भक्ता ज्ञानाब्धिपारगाः ॥१५१॥
यान्ति मे तीव्रवृत्तीनां स्वतः सन्धौ स्वरूपताम्।
विक्षेपबहुलेनान्तः करणेन समन्विताः ॥ १५२ ॥
सन्तोऽपि स्वस्वरूपस्य ह्यपरोक्षानुभूतितः।
मुक्तात्मानोऽभिधीयन्ते श्रेणीमाद्यां गता अमी ॥ १५३॥

रखता, वे जीवन्मुक्त सर्वमुक्त हो जाते हैं ॥१४४-१४६॥ हे पितृगण ! जिस आत्मज्ञानको प्राप्त करके मेरे ज्ञानी भक्तगण उत्तम जीवन्मुक्त-पदवीको प्राप्त करते हैं उस आत्मज्ञानके आविर्भावकी दशा वेदमें तीन श्रेणी की कही गई है। वेदान्तप्रतिपाद्य सच्चिदानन्दमय स्वरूपकी उपलब्धि अपरोक्षानुभूति द्वारा करते ही जीव वन्धनरहित हो जाता है; किन्तु उस समय घूमते हुए कलालचक्रके समान उसके चित्तके विक्षेप उसके प्रारब्धकी प्रवलताके कारण दूर नहीं होते हैं और उसकी व्युत्थान दशा अधिकता से वनी रहती है परन्तु वह भाग्यवान् मेरा भक्त तीव्रवृत्तियोंकी सन्धिमें अपने आपही मेरे स्वरूपमें पहुंच जाया करता है। विक्षेप वहुल अन्तःकरणसे युक्त होने पर भी स्वस्वरूपकी अपरोक्षानुभूति द्वारा वह मुक्तात्मा प्रथम श्रेणीका कहाता है।

प्राकृतेन कलङ्केन दृश्यासक्त्या च वर्जिता ।
जगज्जालविहीनेयमवस्था जायते ध्रुवम् ।। १५४ ।।
मनोऽपि जायते नूनं सम्यग्भर्जितबीजवत् ।
तस्मिन् हि ज्ञानिभक्तेऽहं मनोमोहात्मकेन वै ।। १५५ ।।
व्युत्थाने मेघजालेन पिहितोऽप्यन्तरान्तरा ।
प्रकाशे श्रावणे मासे यथा सूर्य्यो घनावृतः ।। १५६ ।।
अस्यामाद्यदशायां हि जीवन्मुक्ताः स्वधाभुजः ! ।
परिश्रान्ता भवन्तोऽपि पदे ज्ञानमये परे ।। १५७ ।।
प्राप्नुवन्त्येव विश्रान्तिं परमानन्दरूपिणि ।
द्वितीयायामवस्थायां जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।। १५८ ।।
चित्सत्ता हि ममोन्मुक्ता मनसः शान्तिशालिनी ।
तमोज्योतिर्गणैर्मुक्ता राजते व्योमवद्विभुः ।। १५९ ।।
अत्र गाढ़सुषुप्तेर्भो पितरोऽनुभवो यथा ।
पाषाणेष्विव काठिन्यमथवा व्योममण्डले ।। १६० ।।

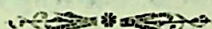
।। १४७-१५३ ।। यह अवस्था जगज्जालरहित प्राकृतिक कलङ्करहित और दृश्यकी आसक्तिसे रहित होती है ।। १५४ ।। मन भर्जित बीजके सदृश हो जाता है और उस ज्ञानी भक्तमें तब मनोमोहरूपी मेघजाल से व्युत्थानदशा में ढके जाने पर भी श्रावणमासके घनावृत सूर्यकी तरह निरन्तर बीच बीचमें प्रकाशितभी होता रहता हूँ ।।१५५-१५६।। इस प्रथम अवस्थामें जीवन्मुक्त परिश्रान्त रहने परभी ज्ञानमय परमानन्दरूपी परमपदमें ही विश्रान्ति लाभ किया करते हैं। जीवन्मुक्त की दूसरी अवस्था में मनसे उन्मुक्त शान्तिशालिनी मेरी चित्सत्ता समस्त तम और समस्त ज्योतिसे मुक्त होकर विभु व्यापक आकाशकी तरह विराजमान रहती है ।। १५७-१५९।। इस दशा में गाढ़सुषुप्तिदशाके अनुभवकी तरह अथवा प्रस्तरमें कठिनताकी तरह अथवा आकाशमें विभु शून्य शक्तिकी तरह बाह्य

विभुः शून्या यथा शक्तिर्बाह्यान् वै विषयान्प्रति ।
स्वभावादुन्मुखत्वस्य परित्यागेन सर्वथा ॥ १६१ ॥
सच्चिदानन्दभावानां स्वस्वरूपेऽनुभूयते ।
अद्वैतसत्ता नितरां नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १६२ ॥
अस्यां द्वितीयावस्थायां जीवन्मुक्तमहात्मनाम् ।
अत्यन्तं जायते स्वल्पा दशा व्युत्थाननामिका ॥१६३॥
आदावन्ते च प्रत्येकवीचेश्चित्तमहोदधेः ।
लभन्ते ज्ञानिभक्ता मे मत्सायुज्यमसंशयम् ॥ १६४ ॥
दशां तृतीयां प्राप्तेषु जीवन्मुक्तेषु भूतिदाः ! ।
नीरक्षीरसुसम्मेलसन्निभा चित्प्रधानिका ॥ १६५ ॥
सत्ता मे त्रिविधाऽखण्डब्रह्माकारत्वमाश्रिता ।
तत्राभिन्नेव संयुक्ता मया सह विराजते ॥ १६६ ॥
सत्ता तात्कालिकी नामरूपातीततया खलु ।
ब्रह्मात्मेत्यादिसंज्ञाभ्यो ह्यतीता केवलेन च ॥ १६७ ॥
नित्या रूपेण नित्यं सा स्वतः पूर्णाऽवतिष्ठते ।
अवस्थेयं प्रकृत्याश्च स्वतीता देशकालतः ॥ १६८ ॥

विषयके प्रति उन्मुखताको स्वभावसे परित्याग करके स्वस्वरूपमें सच्चिदानन्द भावकी अद्वैतसत्ता सर्वथा अनुभूत होती है ।।१६०-१६२।। जीवन्मुक्तकी इस द्वितीय दशामें व्युत्थान दशा बहुत कम होती है और साथ ही साथ अन्तःकरणरूपी समुद्रकी वृत्तिरूपी प्रत्येक वीचिके आदि अन्तमें ही मेरे ज्ञानीभक्त मत्सायुज्यको प्राप्त करते रहते हैं ।।१६३--१६४।। हे पितृगण ! जीवन्मुक्त भक्त तीसरी दशाको प्राप्त करने पर उसमें नीर क्षीर के सम्मेलनकी तरह चित्प्रधान मेरी त्रिविधसत्ता अखण्ड ब्रह्माकार भावको प्राप्त करके मेरे साथ अभेदसे बनी रहती है, और उस समयकी सत्ता नामरूपसे अतीत होनेके कारण ब्रह्म आत्मा इत्यादि संज्ञाओंसे भी अतीत होकर केवल-रूपसे नित्य और स्वतः पूर्ण होकर अवस्थान करती है। यह अवस्था

स्वस्वरूपे तुरीयादिदशाभ्योऽपि बहिर्गता ।
परभावमयी नित्या जायते परमाद्भुता ॥ १६९ ॥
निखिलेभ्योऽपि मार्गेभ्यः पान्थेभ्यो दूरवर्त्तिनी ।
विदेहाख्याऽपि यस्मात्सा ततो मत्सन्निभाऽस्त्यसौ ॥७०१
इयं ह्युपनिषद्विद्या सर्व्वथा पितरो हिता ।
वेद्या भवद्भिरप्येषा श्रुतिः साध्वी सनातनी ॥ १७१ ॥

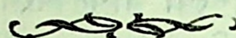
इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रम्हविद्यायां योगशास्त्रे
सदाशिवपितृसंवादे भगवद्भागवतसम्बन्ध-
निरूपणं नाम षष्ठोऽध्याय ।



देश काल और प्रकृतिसे अतीत हो स्ववस्वरूपमें तुरीयातीत आदि अवस्थासे भी अतीत होकर अद्भुत परम भावमय हो जाती है। यह तृतीय अवस्था सब पथ और सब पथिकोंसे दूरवर्ती होनेसे और विदेह कहलानेसे मेरे तुल्य है। हे पितृगण ! इसीको हितकरी उपनिषद्विद्या और सनातनी श्रुति जानो ॥ १६५-१७१॥

इसप्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रह्मविद्या सम्वन्धी योग-
शास्त्रका सदाशिव पितृसंवादात्मक भगवद्भागवत-
सम्वन्धनिरूपण नामक षष्ठ अध्याय
समाप्त हुआ ।

शिवलिङ्गनिरूपणम्।



पितर ऊचुः ॥ १ ॥

देवादिदेव! सर्व्वात्मन्! सर्व्वाधार! जगद्गुरो!।
वयं यद्यपि सर्व्वेश! नेशाः सम्यक्तया विभो! ॥ २ ॥
जीवन्मुक्तिरहस्यं वै विधातुं हृदयङ्गमम्।
अन्वभूम तथाप्येतत्कृपातो भवतो ध्रुवम् ॥ ३ ॥
शाश्वतस्यास्ति धर्म्मस्य परशक्त्यात्मकस्य ते।
सर्वजीवहितं नित्यं कुर्वाणस्यान्तिमं फलम् ॥ ४ ॥
जीवन्मुक्तिर्न सन्देहो विद्यते हि सदा प्रभो!।
जीवन्मुक्तिपदं प्राप्य त्वद्दयातो दयानिधे! ॥ ५ ॥
जनो भागवतो नूनं भगवानेव जायते।
तवाऽपारकृपापुञ्जाज्ज्ञातमस्माभिरित्यपि ॥ ६ ॥
सार्द्धं भेदो भगवद्भक्तैर्जीवन्मुक्तिपदङ्गतैः।
भवतः कोऽपि कुत्रापि कथञ्चिन्नैव वर्त्तते ॥ ७ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे देवादिदेव! हे सर्व्वेश्वर! हे सर्व्वाधार! हे सर्व्वात्मन्। हे जगद्गुरो! हे विभो! यद्यपि इस सम्यक्रूपसे जीवन्मुक्त रहस्य को हृदयङ्गम नहीं कर सकते परन्तु हे प्रभो! इतना अवश्य आपकी परमकृपा से हमारे अनुभवमें आ गया है कि शाश्वत, सार्व्वजीवहितकर आपकी परमशक्ति रूपी धर्म्मका अन्तिम फल निरन्तर जीवन्मुक्तिही है और जीवन्मुक्तिपदवीको प्राप्तकरके आपकी कृपा से भागवत जन भगवान् ही हो जाते हैं और यह भी आपकी अपार कृपा से समझमें आ गया कि जीवन्मुक्तिपदवी प्राप्त आपके भक्तोंमें और आपमें कहीं किसीप्रकार कोई भी भेद नहीं है। हे

निजभक्तैर्भवान् यत्र लिङ्गाकारेऽर्च्यते प्रभो ! ।
यथार्थं तत्स्वरूपं नो दर्शयित्वा कृतार्थय ॥ ८ ॥

सदाशिव उवाच ॥ ९ ॥

हे वर्णाश्रमधर्म्माणां रक्षकाः ! पितरोऽखिलाः ! ।
वासनाभिः शुभाभिर्वः प्रसन्नोऽहमतोऽधुना ॥१०॥

देवदानवमर्त्यानां युष्माकञ्च सुदुर्लभम् ।
दिव्यं ज्ञानमयं चक्षुरदः कालकृते ददे ॥ ११ ॥
चिन्मयस्यास्य लिङ्गस्य स्वरूपं मे यथायथम् ।
यूयं पश्यत येनात्र जायतां वः कृतार्थता ॥ १२ ॥

पितर ऊचुः ॥ १३ ॥

अहो विस्मृतात्मान आश्चर्य जाताः
परात्मन् ! वयं नैव विद्मोऽत्र हेतुम् ।
भवाँश्चिन्मयस्येह वीजस्य दातृ
धरन् लिङ्गरूपं विराड्विश्वयोनौ ॥ १४ ॥

प्रभो ! अपने भक्तोंके द्वारा जिस लिङ्गाकारमें आप पूजे जाते हैं उसका यथार्थ स्वरूप क्या है ? सो हमें दिखाकर कृतकृत्य कीजिये ॥ २-८॥

श्रीसदाशिव बोले ॥ ९ ॥

हे वर्णाश्रमधर्म्मके रक्षक पितृगण ! आपकी शुभवासनासे मैं प्रसन्न हुआ हूँ इसकारण देव दानव पितृ मनुष्य आदिको दुर्लभ ज्ञाननेत्र इस समयके लिये आपको प्रदान करता हूँ। आप मेरे चिन्मय लिङ्गका यथार्थ स्वरूप दर्शन करो जिससे आपलोगोंकी कृतकृत्यता हो ॥ १०-१२ ॥

पितृगण बोले ॥ १ ॥

हे परमात्मन् ! अहो ! अब हम अपनेको भूल गये। हम लोग इसका कारण नहीं समझ रहे हैं। अब हम देखते हैं कि आप चिन्मय

समालोक्यते सम्प्रवेशं प्रकुर्वन्
पुनर्लिङ्गपीठद्वयं दृश्यते च ।
धरन्त्वेकयुग्मस्वरूपं मनोज्ञं ।
समाच्छादयद्विश्वमेतत्समस्तम् ॥ १५ ॥
समालोक्यतेऽस्माभिरित्यत्र भूयो
भवच्चिन्मयाऽद्वैतलिङ्गादतीतम् ।
अहो नोऽपरं वस्तु कुत्रापि किञ्चित्
कथञ्चिन्न चक्षुःपथं नूनमेति ॥ १६ ॥
अहो सर्व्वसाक्षिन् ! विभो ! विश्वयोन्या
प्रकृत्या पुनर्विश्वसृष्टेरिहादौ ।
तथान्ते भवल्लिङ्गसँल्लीनयैव
परो द्योत्यते चिन्मयोऽद्वैतभावः ॥ १७ ॥
महादेव ! पश्याम आद्यन्तशून्ये
पृथक् तेऽत्र लिङ्गे पृथग् यत्र तत्र ।
अनन्तेषु केन्द्रेषु पार्थक्यतो हि
जगत्सृष्टि-रक्षा-लयान् कुर्वतोऽलम् ॥ १८ ॥

बीजदाता लिङ्गरूप होकर विश्वयोनिमें प्रवेश करते हो। हम पुनः देखते हैं कि वह लिङ्ग और पीठ दोनों एक युगलरूपको धारण करके सारे विश्वको छा रहा है। हम पुनः यहां देखते हैं कि अहो! आपके चिन्मय अद्वितीय लिङ्गके अतीत और कोई दूसरी वस्तु किसी प्रकार कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देती ॥ १४-१६ ॥ हे सर्व्वसाक्षिन्! विभो! सम्पूर्ण सृष्टिके आदि और अन्तमें विश्वयोनि प्रकृति पुनः आपके लिङ्गमें ही लय होकर अद्वैत चिन्मयभावकी प्रकाशक बनती है ॥ १७ ॥ हे महादेव! हम देखते हैं कि आपके उस आदि अन्त रहित लिङ्गमें अलग अलग ब्रह्मा विष्णु महेश अनन्त स्थानों में जहां

अनेकान् विधींश्चैव विष्णून् महेशान्
निरीक्षामहे विश्वगोलव्रजेञ्च ।
पुनर्भूषितं विश्वमूर्त्तेऽत्र लिङ्गे
अनेकैरहो भग्रहोपग्रहैश्च ॥ १९ ॥

अहो ! सर्वसाक्षिन् ! कियन्त्यत्र लिङ्गे
समं विश्वगोलानि जायन्त आद्ये ।
कियन्त्यासते च प्रलीयन्त आशु
निमग्नान्यमुष्मिन् कियन्ति प्रभो ! ते ॥ २० ॥

निरीक्षामहेऽनन्त ! भूयो वयं य-
दनेके हि जिज्ञासवो देवसङ्घाः ।
महर्षिव्रजास्तस्य लिङ्गस्य चादिं
प्रवृत्ताः समन्वेष्टुमन्तं परन्तु ॥ २१ ॥

न चादिं न चान्तं समासाद्य तस्य
स्वयं वर्त्तने नूनमाद्यन्तशून्यः ।
विराड्विश्वयोनौ प्रविष्टो हि लिङ्गः
स्वसिद्धान्तमित्येव कुर्वन्ति मुग्धाः ॥ २२ ॥

तहां अलग अलग भलीभांति सृष्टि स्थिति और लयका कार्य्य करते दिखाई पड़ते हैं। हे विराट् मूर्ते! उस लिङ्गपर अनेक तारा नक्षत्र ग्रह उपग्रह आदिसे भूषित अनन्त ब्रह्माण्डसमूह भासमान दिखाई पड़ते हैं ॥ १८-१९॥ हे सर्वसाक्षिन् प्रभो ! अहो ! आपके उस लिङ्गमें कितने ही ब्रम्हाण्ड एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, कितने ही ब्रम्हाण्ड स्थित दिखाई पड़ते हैं और कितने ही ब्रम्हाण्ड उसमें डूबकर शीघ्र लय होते दिखाई पड़ते हैं ॥२०॥ हे अनन्त ! हम लोग देखते हैं कि अनेक जिज्ञासु देवतागण और महर्षिगण उस लिङ्गका आदि और अन्त अन्वेषण करने में प्रवृत्त होते हैं परन्तु वे मूढ़ अन्त में उस विराट्योनि में प्रविष्ट लिङ्गका आदि और अन्त न पाकर

प्रभो ! शब्दजातादतीताखिलात्मन् !
निरीक्षामहे ते पुनस्तत्र लिङ्गे ।
विराजत्स्वनेकेषु लोकेषु सिद्धाः
महर्षिव्रजास्त्वाञ्च शब्दैः प्रणोतुम् ॥ २३ ॥
यतन्ते सदा वैदिकैर्लौकिकैश्च
परञ्चैव वाचस्तथा शब्दपुञ्जात् ।
अतीतो भवान् वर्त्ततेऽतः स्वयं ते
ह्यवाचः क्षणात्स्युः सुमूकाश्चं सन्नाः ॥ २४ ॥
विभो ! ते महेशान लिङ्गं विराजं
निमग्ना वयं विस्मयाब्धौ निरीक्ष्य ।
अहो दृश्यते ते विराडेष लिङ्गो
दशायां हि सृष्टेर्विभुव्योममध्ये ॥ २५ ॥
प्रभो ! ओतप्रोतो ह्यनाद्यन्तभावं
तवाऽऽदर्श्य बुद्धिं विधत्तो विमूढाम् ।
सदाऽस्माकमेवं मनो मूर्च्छितञ्च
त्वतो नो न वाचः स्फुटं निस्सरन्ति ॥ २६ ॥

उसका आदि और अन्त नहीं है ऐसे सिद्धान्त पर उपनीत होते हैं ॥ २१-२२ ॥ हे शब्दसमूहसे अतीत ! सर्वात्मन् ! प्रभो ! हम देखते हैं कि उस लिङ्गमें विराजमान अनेक लोकोंमें सिद्ध महर्षिगण वेद क्षौर शास्त्रोंके शब्दोंके द्वारा आपकी स्तुति करनेका यत्न करते है; परन्तु आप वाक् और शब्दसे अतीत होनेके कारण थोड़े ही समयमें वे निर्वाक् होकर स्तब्ध और मूकवत् हो जाते हैं ॥ २३-२४ ॥ हे महेश्वर ! हम आपके विराट् लिङ्गको देखकर विस्मयसमुद्रमें डूबते हुए चकित होते हैं और हे प्रभो ! देखते हैं कि सृष्टिदशामें वह लिङ्ग विभु आकाशमें ओत प्रोत हो आपका अनादित्व और अनन्तत्व दिखाकर हमारी बुद्धिको थकित करता

तथेक्षामहे तस्य सृष्टेरतीत-
दशायां सदा देशतः कालतश्च ।
अवस्थाऽपरिच्छिन्नभावं गताऽलं
प्रभोऽद्वैतभावं यदा द्योतयेन्नु ॥ २७ ॥
अवस्थां तदेमामवेक्ष्येह नोऽलं
लयं याति शीघ्रं मनः सेन्द्रियं हि ।
तथाऽस्माकमुत्सृज्य बुद्धिः स्वयञ्च
दशां त्रैपुटीं सत्वरं सँल्लिनाति ॥ २८ ॥
अहो ! कारणानां प्रभो ! कारणात्मन् !
विभो याति लिङ्गे यदा चिन्मये ते ।
लयं विश्वगोलव्रजो दीप्यमान-
स्तदालोक्यते कौतुकं तत्र चित्रम् ॥ २९ ॥
विभु व्योम भूतान्तरं सर्व्वमेव
सलीलं स्वलीनं विधाय स्वयञ्च ।
विलीयाम्बुधौ देशकालस्वरूपे
सदेशं सकालं सदेत्थं निमग्नम् ॥ ३० ॥

है और मनको मूर्च्छित करता है इसलिये हमारी स्पष्ट बातें नहीं निकलतीं ॥ २५-२६ ॥ पुनः वैसे ही जब देखते हैं कि सृष्टि से अतीत अवस्थामें उसकी देश कालसे अपरिच्छिन्न अवस्था अद्वैतभाव-को प्रकट करती है तो स्वतः ही हमारे मन इन्द्रियोंके साथ और हमारी बुद्धि त्रिपुटीदशाको छोड़कर शीघ्र लय हो जाती है ॥ २७-२८ ॥ हे सर्व्वकारणकारण ! जब उस विभु चिन्मय लिङ्गमें भासमान ब्रह्माण्डसमूह लयको प्राप्त होते हैं तो हम देखते हैं कि विभु आकाश अन्यान्य सब भूतसंघोंको अपनेमें अनायास लय करके स्वयं देशकालरूप समुद्रमें लय होकर उनके साथ उस लिङ्ग

भवत्यस्य लिङ्गस्य कस्मिन् प्रदेशे
यथा तस्य सत्तानुभूतिः कथञ्चित्।
न सन्तिष्ठते क्वापि नूनं कुतश्चित्
परात्मन्! प्रभो! नाथ! शम्भो! दयालो! ॥३१॥
विभो! विश्वगोलप्रकाण्डा अनन्ता
अहो चिन्मये तत्र लिङ्गे विराजि।
अनेकैः सहैवाखिलाधाररूप!
पितृव्रातदेवव्रजर्ष्योघकैर्हि ॥ ३२ ॥
अनन्तैर्मनुष्यासुरैर्भूतसङ्घै-
श्चतुर्धा विभक्तैः प्रतीयन्त इत्थम्।
यथा चित्रिता मूर्त्तयः स्तम्भमध्ये
विचित्रा विचित्रेऽश्मभिर्निर्म्मितेऽलम् ॥ ३३ ॥
प्रभो! सन्ति ता मूर्त्तयः प्रस्तरेषु
सदाऽऽलेख्यभावं गताः केवलं हि।
न चान्यत् परं वर्त्तते तत्र किञ्चि-
दहो वस्तुतो ज्ञानसिन्धो! दयालो। ॥ ३४ ॥
अनन्ताऽमिता विश्वगोलव्रजा हि
विराजन्त एवं विधास्तत्र लिङ्गे।

के कौनसे स्थानमें इस प्रकारसे डूब जाता है कि हे परमात्मन्! हे दयालो नाथ! हे प्रभो शम्भो! किसी प्रकार कहींसे उसकी सत्ताका कुछ अनुभव ही नहीं रहता है ॥२९-३१॥ हे सर्वाधार! उस चिन्मय विराट् लिङ्गपर अनन्त ब्रह्माण्डसमूह, अनेक देव ऋषि पितृ असुर मानव और चतुर्विध भूतसंघके साथ ऐसे प्रतीत होते हैं जैसा कि किसी पत्थर के खम्भेपर विचित्र मूर्तियां खुदी हुई हों। हे ज्ञान सिन्धो! हे दयालो! वे मूर्तियां भी प्रस्तर खोदित हैं और कुछ नहीं हैं ॥ ३२ ३४ ॥ वास्तवमें वैसे ही अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-

परं सोऽपि लिङ्गस्तु निर्लिप्त एव
प्रतीयेत तैर्नात्र सन्देहलेशः ॥ ३५ ॥
न चादिर्न चान्तोऽस्ति लिङ्गस्य तस्य
समस्तेश ! सर्व्वस्वरूप ! प्रभो ! भोः !
भवच्चिन्मयो वर्त्तते लिङ्ग एषः
सदाऽन्तर्बहिः पूर्ण एवं भवन्वै ॥ ३६ ॥
अहो देशकालाऽपरिच्छिन्न आरा-
द्नाद्यन्तरूपेण पूर्णः परात्मन् ! ।
निरीक्ष्येत नूनं सदा सर्वतो हि
न चास्तेऽत्र सन्देहलेशः कथञ्चित् ॥ ३७ ॥
प्रदर्शं प्रदर्शं सदा लिङ्गमेनं
विराण्मूर्त्तिभृत् ! ज्ञाननेत्रस्य नोऽलम् ।
क्षमत्वं यदा दूरदृष्टेर्विनश्येत्
तदैकापरूपं प्रदृश्येत रूपम् ॥ ३८ ॥
यदा ते दयासागरैतद्विचित्रं
मनोबुद्धिवाग्वैभवातीतलिङ्गम् ।

समूह उस लिङ्गमें हैं परन्तु वह लिङ्ग उन सबसे निर्लिप्त ही प्रतीत होता है, इसमें सन्देहका लेश भी नहीं है ॥ ३५ ॥ उस लिङ्गका न आदि है और न अन्त है। हे सर्व्वेश्वर सर्व्वमय विभो परमात्मन् ! आपका चिन्मय लिङ्ग बहिः पूर्ण अन्तः पूर्ण और देश कालसे अपरिच्छन्न होकर अनादि और अनन्त रूपसे सर्व्व-पूर्ण दिखाई पड़ता है, इसमें किसी प्रकार का सन्देहलेश नहीं है। ॥ ३६-३७ ॥ हे विराट् मूर्त्ते ! आपके विराट् लिङ्गको देखते देखते हमारे ज्ञाननेत्रकी दूरदर्शनशक्ति जब थकित होकर नष्ट हो जाती है तब हमें आपका और एक अपरूप रूप दिखाई देने लगता है ॥ ३८ ॥ हे करुणावरुणालय ! जब आपके इस चमत्कार वाङ्मन

समालोक्य किंकार्य्यमूढ़ाः स्वचित्तैः
किमप्याश्रयामस्तदेक्षामहेऽन्यत् ॥ ३९ ॥
लिनातीह शब्देऽखिलास्थूलसृष्टिः
स्वराः षड्जनामादयः सप्त चैवम् ।
सदौङ्कारशब्देऽद्वितीये लिनन्ति
अविच्छिन्न आस्ते यथा तैलधारा ॥ ४० ॥
यथा दीर्घघण्टानिनादोऽस्ति यस्तु
सदैकेन भावेन युक्तस्तथैव ।
समुत्पादकोऽस्त्येकतत्त्वस्य सोऽयम्
भवानासने प्राणवे तत्र भाति ॥ ४१ ॥
अनन्तात्मकस्ते जटा दिक्समूहः
त्रिकालात्मकं ते विशालं त्रिनेत्रम् ।
अनन्तो विभुर्वर्त्तते ते दयालो ।
सुयज्ञोपवीतं पवित्रं मनोज्ञम् ॥ ४२ ॥
लयस्थानभूतोऽपि विश्वस्य देव ।
भवान् भूषिताङ्गो विभूत्या विभाति ।

और बुद्धिसे अग्राह्य लिङ्गको देखकर हम अपने अन्तःकरणोंके द्वारा किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर आपके शरणागत होते हैं तो कुछ हम और ही देखने लगते हैं ॥ ३९ ॥ हम देखते हैं कि सव स्थूल सृष्टि शब्दमें लय होती है, षड्ज आदि सप्तस्वर अद्वितीय प्रणयमें लय होते हैं जो तैलधाराकी नाईं अवच्छिन्न है और दीर्घ घंटाके शब्दकी नांई एक भावयुक्त होकर एकतत्त्व उत्पादक है, आप उसी प्रणव आसनपर बैठे हैं ॥ ४०-४१ ॥ हे दयालो ! अनन्त रूपधारी दशो दिशाएँ आपकी जटा हैं, त्रिकालरूपी आपके तीन विशाल नेत्र हैं, विभुरूपधारी अनन्त आपका पवित्र मनोहर यज्ञोपबीत है ॥ ४२ ॥ हे देव ! आप संसारके लयस्थान होकर

चतुर्हस्तमध्येऽस्त्यहो खर्प्परस्ते
त्रिशूलञ्च शृङ्गं डमर्वाख्यवाद्यम् ॥ ४३ ॥
परासिद्धिमोक्षस्त्रितापश्च नूनम्
प्रभो वर्त्तते खर्प्परश्च त्रिशूलम् ।
निवृत्त्यात्मको धर्म्म एवास्ति शृङ्गं
डमर्वाख्यवाद्यं चतुर्धाऽर्थ एव ॥ ४४ ॥
सदैकाऽद्वितीयोऽपि नैर्जीं स्वशक्तिं
प्रकृत्यात्मिकां तां स्वतो निर्गमय्य ।
स्वशक्त्या तया श्यामया शोभिताङ्को
भवान् राजतेऽलं धरन् प्रेमतस्ताम् ॥ ४५ ॥
तया श्यामया भूयते पूर्णशक्त्या
सती तद्विधैवाऽस्त्यसौ षोड़शी च ।
करेणात्तपाशेन जीवाय बन्धं
सविद्याङ्कुशेन प्रदत्ते च मुक्तिम् ॥ ४६ ॥
अविद्यास्वरूपा सपाशेयमेव
तथा साङ्कुशा सैव विद्यास्वरूपा ।

विभूतिभूषिताङ्ग हैं, आपके चारों हाथोंमें त्रिशूल खप्पर सिंगा और डमरु, त्रिताप, परासिद्धिरूपी मोक्ष, निवृत्तिधर्म और चतुर्विध अर्थरूपसे शोभायमान हैं, आप एक अद्वितीय होने पर भी अपने ही में से अपनी प्रकृतिको बाहर करके अपने वाम अङ्क पर अति प्रेमसे धारण करते हुए शोभायमान हो ॥ ४३–४५ ॥ वह श्यामा पूर्ण शक्तिशालिनी होकर षोड़शी है और अपने हाथों में पाश और अंकुश धारण करके जीवोंको मायाजाल में फांसती भी है और ज्ञानरूपी अंकुश द्वारा मुक्त भी करती है, पाशविधायिनी होकर वही अविद्यारूप और अङ्कुशविधायिनी होकर वही

सती पाति सृष्टेरलं वैभवं ते
वयं नाथ। विद्यापते। त्वां नमामः ॥ ४७ ॥
त्रयाणां गुणानां गुणाधार। बीजं
तथेशो गुणग्रामिणां वर्त्तसे त्वम्।
गुणेभ्योऽप्यतीतस्य तेऽङ्के गुणात्म-
प्रकृत्या स्थितं सन्नमामो भवन्तम् ॥ ४८ ॥
प्रभो ! सिद्धरूपस्तथा सिद्धिबीजं
अहो। सिद्धराजोऽपि सिद्धेर्लयोऽसि।
ददद्भाग्यवद्भ्यः परासिद्धिमेता-
नितो मोचयेस्ते नमः सिद्धिनाथ ! ॥ ४९ ॥
स्वतेजोमयस्तेज आधाररूपोऽपि
तेजस्सुबीजश्च तेजस्विनाथः।
तिजः कर्षसि प्राणिनस्तेजसा स्वा-
भिमुख्येन तेजोमय ! त्वां नमामः ॥ ५० ॥

विद्यारूप होती हुई आपके सृष्टि-वैभव की रक्षा करती है, हे विद्यापते स्वामिन् ! आपको नमस्कार है ॥ ४६-४७ ॥ हे गुणाधार ! आप त्रिगुण के बीजस्वरूप और गुणियोंके ईश्वर हो और आप गुणातीत होने पर भी गुणमयी प्रकृति आपके आश्रय से ही आपके अङ्क पर स्थिता है, आपको नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे सिद्धिनाथ ! आप सिद्धस्वरूप, सिद्धिवीज और सिद्धगणके अधीश्वर होने पर भी आपही सिद्धि के लय स्थान हो और हे प्रभो ! आपही परा सिद्धि देकर परमभाग्यशाली जीवको मुक्ति पद प्रदान करते हों, आपको नमस्कार है ॥ ४९ ॥ हे तेजोमय ! आप तेजाधार तेजबीज तेजस्वरूप और तेजस्विगण के ईश्वर होने पर भी निरन्तर अपने तेज द्वारा तेजस्वी जीवोंको अपनी ओर आकर्षण करते रहते हो, आपको नमस्कार है ॥ ५० ॥

अपि ज्ञान्यधीशोऽपि बुद्धेरतीत-
स्त्वधिष्ठाय बुद्धिं सतः प्राणिनस्त्वम् ।
नयस्येव शश्वद्धिया मोक्षभूमिं
वयं धीश ! नम्रा नमामो भवन्तम् ॥ ५१ ॥
विभो ! सृष्टिरक्षाविनाशैकहेतो !
परेभ्यः पर ! त्वं प्रभो ! वर्त्तसेऽलम् ।
महीयोविराड्रूपवृक्षस्य बीजं
वयं सर्वशक्त्यात्मक ! त्वां नमामः ॥ ५२ ॥
तवास्याङ्कुरेणैव मूलप्रकृत्या
तथा वर्त्यते विष्णुवेधोमहेशैः ।
त्रिभिः स्कन्धरूपैः सुरर्ष्यादिभिस्तै-
रनेकैर्हि शाखाप्रशाखास्वरूपैः ॥ ५३ ॥
अहो तस्य वृक्षस्य संसार एव ।
फलं विद्यते नात्र सन्देहलेशः !
विभो ! विश्वनाथ ! प्रणम्याशुतोष !
वयं सादरं साञ्जलि त्वां नमामः ॥ ५४ ॥

हे धीश ! ज्ञानिगणके ईश्वर होने पर भी आप बुद्धि से अतीत हो और आप ही बुद्धि में अधिष्ठित होकर बुद्धिद्वारा सदा जीवगण को मुक्ति भूमि में पहुँचा दिया करते हो, आपको नमस्कार है ॥ ५१ ॥ हे सर्वशक्तिमय ! सृष्टि स्थित और प्रलय के कारणके ईश्वर ! हे परमात्मन् ! हे प्रभो ! आप ही महा विराट्रूप तरुके वीज हो, आपको नमस्कार है ॥ ५२ ॥ हे आशुतोष ! हे विश्वनाथ ! आपकी मूल प्रकृति अंकुर है, व्रम्हा विष्णु महेश उसके तीन स्कन्ध हैं, ऋषिगण और देवतागण आदि उसकी शाखा प्रशाखा हैं, संसार उसका फल है, आपको सादर हाथ जोड़कर नमस्कार है ॥ ५३-५४ ॥ हे धर्म्ममूर्ते ! आप उस महान् वृक्षके वीज होने पर

अपि त्वं महीयस्तरोस्तस्य बीजं
तदाधार आस्सेऽखिलाधाररूपः।
निराधाररूपोऽपि धर्म्मात्मना तु
प्रभो धर्म्ममूर्त्ते ! भवन्तं नमामः ॥ ५५ ॥
विहारिन्। विभो। भक्तचेतोनिकेते
शरण्यं किलैकान्ततस्त्वां व्रजामः।
यथा नो भवेदत्र कल्याणमाशु
तदेवाधुना देव। शम्भो। विधेहि ॥ ५६ ॥

सदाशिव उवाच ॥ ५७ ॥

भवतां सम्प्रसन्नोऽस्मि स्तवैरेभिः स्वधाभुजः। ।
कल्याणं त्रिविधं भूयाद्भवद्भ्यो निश्चितं सदा ॥ ५८ ॥
प्राप्य त्रिविधकल्याणमेवं मुक्तिपदेऽनिशम्।
अग्रेसरत निर्बाधं सलीलं विश्वभूतिदाः। ॥ ५९ ॥
जैवेशसहजाख्यानां द्रष्टा सन् कर्म्मणामहम्।
गत्या स्वतन्त्रयाऽमीभिस्त्रिभिरेव स्वतन्त्रया ॥ ६० ॥

भी उसके आधाररूप हो और स्वयं निराधार होकर भी आपही धर्म्मरूपसे सबका आधार हो, आपको नमस्कार है ॥ ५५ ॥ हे भक्तमनोमन्दिरविहारी ! अब हम आपके एकान्त शरणागत होते है, हे देव शम्भो ! जिससे हमारा शीघ्र कल्याण हो ऐसा करिये ॥ ५६ ॥

श्रीसदाशिव बोले ॥ ५७ ॥

हे संसारसुखदायी पितृगण ! मैं आपकी इन स्तुतियोंसे प्रसन्न हूँ, आप लोगों का सदा त्रिविध कल्याण हो और त्रिविध कल्याण प्राप्त करके आप मुक्तिपद में अनायास वेरोक अग्रसर हो ॥ ५८-५९ ॥ हे पितृगण ! मैं जैव ऐश और सहज कर्म्म का द्रष्टा होकर इन तीनोंके द्वारा ही स्वतन्त्र स्वतन्त्र गति से

सम्प्रयच्छामि कैवल्यं त्रिविधं वै विशेषतः ।
नैव कश्चन सन्देहो विद्यतेऽत्र स्वधाभुजः ! ॥ ६१ ॥
जैवेन कर्म्मणा दत्त्वा पदं शुक्लपथान्वयि ।
ऐशेन कर्म्मणा नूनं पदं त्रैमौर्त्तिकं वरम् ॥ ६२ ॥
जीवन्मुक्तिपदं श्रेष्ठं कर्म्मणा सहजेन च ।
सार्थकं स्वं त्रिनेत्रत्वं विदधेऽहं स्वधाभुजः ! ॥ ६३ ॥
वर्णाश्रमीयधर्म्माणां भवन्तो रक्षका यतः ।
अतः सहैव सम्बन्धस्त्रिभिर्वः परियुज्यते ॥ ६४ ॥
यत्राग्रगामिभावस्य वर्त्ततेच्छात्र वो मुदा ।
तदग्रेसरतां लब्धुं भवन्तः शक्नुवन्ति च ॥ ६५ ॥
भवन्तो धर्म्ममाश्रित्य कर्त्तव्यज्ञानतत्पराः ।
पितरः ! स्वीयकार्य्येषु निरता भवत ध्रुवम् ॥ ६६ ॥
तथा जगति धर्म्माणां पूर्णरूपप्रकाशने ।
सहायकाः सदा यूयं भवत ह्यागतन्द्रिताः ॥ ६७ ॥
मत्परायणतां सेवातत्परत्वञ्च मे विना ।
ऋते मद्युक्तचित्तत्वं साकल्यं वो न सम्भवेत् ॥६८॥

सम्यक् त्रिविध मुक्तिका विधान करता हूँ, इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ ६०-६१ ॥ सहज कर्म्मसे श्रेष्ठ जीवन्मुक्त पद, ऐश कर्म्मसे त्रिमूर्त्तिपद और जैव कर्म्म द्वारा शुक्लपथगामी पद प्रदान करके अपने त्रिनेत्रकी सार्थकता करता हूँ ॥ ६२-६३ ॥ हे पितृगण ! वर्णाश्रमधर्म्मके रक्षक होनेके कारण तीनोंसे ही आपका सम्बन्ध है, जिसकी ओर आप अग्रसर होना चाहें हो सकते हैं ॥ ६४-६५ ॥ हें पितृगण ! आप धर्म्मका आश्रय करके कर्त्तव्यबुद्धिपरायण होकर अपने कार्य्य में तत्पर हों और जगत् में धर्म्मका पूर्ण स्वरूप प्रकाश करने में आलस्य रहित होकर सदा सहायक हों ॥ ६६-६७ ॥ परन्तु मत्सेवापरायण, मद्गतचित्त और मत्परायण हुए विना

उच्यते सुगमोपायः श्रूयतां विश्वभूतिदाः ! ।
वरिष्ठं यं समालम्ब्य कृच्छ्रात् कृच्छ्रतरेष्वपि ॥ ६९ ॥
सक्ताः कार्य्येषु मद्भक्तेर्विमुखा न भविष्यथ ।
नूनमेकोऽद्वितीयोऽपि स्वभक्तेभ्यो निरन्तरम् ॥ ७० ॥
नानाविभूतिरूपेण दत्त्वा दर्शनमद्भुतम् ।
तन्मनोरथसाफल्यं विदधेऽहं स्वधाभुजः ! ॥ ७१ ॥
दिव्यानां मे विभूतीनां नान्तो यद्यपि विद्यते ।
जनन्यो वः पराभक्तेः कियत्यस्तु विभूतयः ॥ ७२ ॥
सङ्क्षेपतः प्रवक्ष्यन्ते श्रूयन्तां ताः समाहितैः ।
भूतेषु चेतनः सृष्टिस्थिति संहाररूपकः ॥ ७३ ॥
परिणामो भवेत्तेषां यश्च सोऽस्म्यहमेव भोः ।
प्रतिब्रह्माण्डमध्येऽस्मि त्रिमूर्त्तिश्च स्वधाभुजः ! ॥ ७४ ॥
महर्षीणां भृगुरहं देवानाञ्च पुरन्दरः ।
अधिभूतप्रभुष्वत्र भवत्स्वस्म्यहमर्य्यमा ॥ ७५ ॥
मानवानामहं राजा शासकेषु यमोऽस्म्यहम् ।

आप सफलकाम नहीं हो सकेंगे। उसके लिये आपको उपाय बताता हूँ, सुनो। उस श्रेष्ठ उपायको अवलम्बन करने पर आप कठिन से कठिन कर्म्म में रत रहने पर भी मेरी उपासनासे च्युत नहीं हो सकोगे। हे पितरो ! मैं एक और अद्वितीय होने पर भी नाना विभूतिरूपसे अपने भक्तोंको हर समय दर्शन देकर सफलमनोरथ किया करता हूँ ॥ ६८–७१ ॥ हे पितृगण ! यद्यपि मेरी दिव्य विभूतियों के बाहुल्यका अन्त नहीं है तौभी मैं तुम्हारेमें परा भक्तिकी उत्पादक कुछ विभूतियोंका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, सुनो। भूतगणके भीतर मैं चेतना हूँ। भूतोंका सृष्टि स्थिति और संहाररूपी जो परिणाम होता है सो मैं हूं। प्रत्येक ब्रम्हाण्डमें त्रिमूर्त्ति हूँ ॥ ७२-७४ ॥ देवताओंमें मैं इन्द्र हूँ। महर्षियोंमे मैं भृगु हूँ और अधिभूतेश्वर आपलोगों में मैं अर्य्यमा हूँ मनुष्योंमें राजा हूँ और शासको में यम

इन्द्रियेषु मनश्चास्मि जह्नुकन्या नदीषु च ॥ ७६ ॥
जलाशयेषु जलधिर्मन्त्रेषु प्रणवोऽस्म्यम् ।
वर्णेष्वोंकाररूपोऽहं यज्ञेषु जपयज्ञकः ॥ ७७ ॥
आकर्षकेषु देशोऽस्मि कालः कलयतामहम् ।
पूज्येषु विग्रहेष्वस्मि शिवलिङ्गः स्वधाभुजः ! ॥ ७८ ॥
भक्तिक्रियासु भक्तानां चक्ररूपोऽहमस्मि च ।
दैवपीठसमूहेषु निश्चितं पितृपुङ्गवाः ! ॥ ७९ ॥
नूनं सहजपीठात्मा पीठोऽस्मि मिथुनाह्वयः ! ।
उपासनायाः स्थानं तु प्रासादप्रमुखेष्वहम् ॥ ८० ॥
नमस्येषु हि दृश्येषु नूनमस्मि स्वधाभुजः ! ।
बटुकश्च कुमारी च दम्पती शव एव च ॥ ८१ ॥
नमस्यासु क्रियास्वस्मि शिक्षादीक्षाक्रियात्मकः ।
तथोपास्तिर्मैथुनञ्च कामोन्मादविवर्जितम् ॥ ८२ ॥
नमस्येषु च शब्देषु वेदपाठः स्तुतिर्मम ।
धर्म्मोपदेशो वै झिल्लीरवश्चाऽस्मि समाधिदः ॥ ८३ ॥
प्रेम्णा स्नेहेन भक्त्या च श्रद्धयाऽपि प्रपूरितम् ।
स्पर्शेषु तु नमस्येष्वालिङ्गनं पितृपुङ्गवाः ! ॥ ८४ ॥

हूं । इन्द्रियों में मन हूं । मैं नदियों में गङ्गा हूं ॥ ७५-७६ ॥ और जलाशयोंमें सागर हूं मन्त्रों में प्रणव हूं और अक्षरोंमें ओंकार हूं । यज्ञोंमें जपयज्ञ हूं ॥ ७७ ॥ मैं वश करनेवालोंमें काल हूँ और आकर्षण करने वालोंमें देश हूं । हे पितृगण ! पूजा उपयोगी विग्रहमें मैं शिवलिङ्ग हूं ॥ ७८ ॥ भक्तगण के भक्ति क्रिया में मैं चक्र हूं। दैवपीट समूह में मैं सहजपीटरूपी मिथुन पीठ हूं । प्रासादादि में मैं उपासना स्थान हूं ॥७९-८०॥ नमस्य दृश्यों में मैं वटुक कुमारी दम्पती और शव हूँ ॥ ८१ ॥ नमस्य क्रियाओं में मैं उपासनाक्रिया, शिक्षाक्रिया, दीक्षाक्रिया और कामोन्मादरहित मैथुनक्रिया हूँ ॥ ८२ ॥ नमस्य शब्दोंमें मैं वेदपाठ, धर्म्मोपदेश, मेरी स्तुतिपाठ और समाधिप्रद झिल्लीरव हूँ ॥ ८३ ॥ नमस्य स्पर्शोंमें मैं स्नेह प्रेम

घ्राणेष्वस्मि नमस्येषु यज्ञधूमोऽन्नगन्धकः।
दिव्यगन्धसमूहश्च पुष्पाणां सौरभं तथा ॥ ८५ ॥
विद्यास्वध्यात्मविद्याऽस्मि मृत्युः संहारकारिषु।
तेजो नरेषु नारीषु पवित्रा श्रीः स्वधाभुजः ।॥ ८६ ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनांकुसुमाकरः।
वाराणां सोमवारोऽस्मि निश्चितं पितृपुङ्गवाः ॥ ८७ ॥
अहोरात्रेषु पितरोऽस्म्यहं सन्धिचतुष्टयम्।
उद्यमोऽभ्युदये कार्य्यें ज्ञानं निःश्रेयसे तथा ॥ ८८ ॥
उद्योगेषु च सर्व्वेषु विश्वकल्याणकारिषु।
दण्डरूपो विमार्गिभ्यो गुणिभ्योऽस्म्यादरस्तथा ॥८९॥
संयमो नियमश्चाहमास्तिक्यश्चाऽस्मि भूतिदाः।
श्वासप्रश्वासरूपेषु सुषुम्ना प्राणकर्म्मसु ॥ ९० ॥
ऐश्वर्य्ययुक्तं यत्किञ्चित् सम्पत्त्या युक्तमेव वा।
बलप्रभावादिगुणैः समृद्धं यद्यदेव हि ॥ ९१ ॥

श्रद्धा और भक्तिपूर्ण आलिङ्गन हूं ॥ ८४ ॥ नमस्य घ्राणोंमें मैं यज्ञ धूम्र, पुष्पसौरभ, अन्नगन्ध और दिव्यगन्ध समूह हूँ ॥ ८५ ॥ हे पितृगण ! मैं विद्याओमें अध्यात्मविद्या, संहारकोंमें मृत्यु, पुरुषों में तेज और स्त्रियोंमें पवित्र श्री हूं ॥ ८६ ॥ मैं मासोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओं में बसन्त और वारोंमें निश्चय सोमवार हूं ॥ ८७ ॥ दिन रात्रिकी चारों सन्धि मैं ही हूँ, मैं अभ्युदयकी क्रियाओंमें उद्यम और निःश्रेयसकी क्रिया में ज्ञान हूँ ॥८८॥ मैं जगत् के कल्याणकारी उद्योग में विपथगामीको दण्ड, गुणीका आदर, संयम, नियम, और आस्तिकता हूँ और श्वास प्रश्वासरूपी प्राणक्रियामें मैं सुषुम्ना हूँ। हे पितृगण ! जो कुछ ऐश्वर्ययुक्त, सम्पत्तियुक्त अथवा प्रभाव बल

दृश्यते तद्विजानीत मद्विभूतिस्वरूपकम् ।
मां विभूतिषु पश्यन्तोऽनुक्षणं हे स्वधाभुजः ! ॥ ९२ ॥
यूयं चेन्मद्गतस्वान्ता अथवा पूजया मम ।
मत्परायणतामेत्य रताः कर्त्तव्यकर्म्मणि ॥ ९३ ॥
भवेयुस्तर्ह्यवश्यं वो विश्वस्याभ्युदयस्य च ।
वहन्तो हेतुतामन्ते मां लभध्वं न संशयः ॥ ९४ ॥
एष चोपनिषत्सारोदेपशः श्रावितो मया ।
शम्भुगीतेतिनाम्नेयं गीता लोके प्रसेत्स्यति ॥ ९५ ॥
कृत्वा त्रयाणां लोकानां मर्त्यानाञ्च क्रमोन्नतिम् ।
धर्म्मज्ञानं यथार्थञ्च तेषु प्रद्योतयिष्यति ॥ ९६ ॥
गीतेयं दैवतत्त्वेष्वविश्वस्तेभ्यः कदाचन ।
गुरुभक्तिविहीनेभ्यो विमुखेभ्यो मदेव हि ॥ ९७ ॥
नास्तिकेभ्योऽशुचिभ्यश्च नैव देया स्वधाभुजः ! ।
गुरौ वेदेषु देवेषु विश्वासं ये प्रकुर्वते ॥ ९८ ॥
तेभ्यो जगत्यां भक्तेभ्यः सदाचारिभ्य एव तु ।
निःसन्देहं प्रदातव्या गीतेयं परमाद्भुता ॥ ९९ ॥

आदि गुण द्वारा समृद्ध जहाँ जहाँ देखो वहीं मेरी विभूति है ऐसा जानना । हे पितृगण ! आप लोग यदि हर समय मुझको विभूतियों-में दर्शन करते हुए मद्गतचित्त होकर अथवा मेरी पूजा द्वारा मत्परायण होकर अपने कर्तव्य कर्म्ममें रत रहोगे तो अवश्य ही अपने तथा जगत्के अभ्युदयके कारण होगे और अन्तमें मुझको प्राप्त होगे, इसमें सन्देह नहीं ॥८९-९४॥ मैंने उपनिषदों का साररूप यह उपदेश तुमको सुनाया है। ये गीता शम्भुगीता नामसे प्रसिद्ध होकर त्रिलोक तथा मनुष्य जातिकी क्रमोन्नति करके उसमें धर्म्मके यथार्थ ज्ञानका विकाश करे ।। ९५-९६ ।। हे पितृगण ! यह गीता दैव-तत्त्वविश्वासहीन, अशुचि, गुरुभक्तिशून्य, परलोक पर विश्वास न रखनेवाले और मुझसे विमुख व्यक्तिको देने योग्य नहीं है। सदाचारी, और गुरु देवता और वेदपर विश्वास रखनेवाले मेरे भक्तोंको ही

यत्र तिष्ठति गीतेयमङ्गोपाङ्गसमन्विता।
अपयाति ततो बाधा तमः सूर्य्योदये यथा ॥ १०० ॥
निस्सन्तानजनेभ्यो हि सुसन्तानप्रदायकः।
आसन्नप्रसवानाञ्च सर्वमंगलकारकः ॥ १०१ ॥
अस्याः पाठोऽस्ति रोगिभ्यो धन्वन्तरिसमो भुवि।
नैवात्र विस्मयः कार्य्यो भवद्भिः पितृपुङ्गवाः! ॥१०२॥
एतया पितरः। शम्भुयागानुष्ठानतो ध्रुवम्।
पाठतो होमतो वाऽपि यथाविधि निरन्तरम् ॥ १०३॥
चतुर्वर्गफलप्राप्तिर्जायते नात्र संशयः।
विशेषतो गृहस्थानां नित्यपाठविधानतः ॥ १०४ ॥
धनैश्वर्य्याणि पुत्राश्च कलत्रं शान्तिरेव च।
प्रजायते न सन्देहः सत्यमेतत् स्वधाभुजः ॥१०५॥
साधकानां निवृत्तानामस्याः पाठेन नित्यशः।
तत्त्वज्ञानाधिकारित्वं स्यान्निःश्रेयसमेव च ॥ ०६ ॥

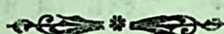
यह परमाद्भुत गीता देनी चाहिये ॥९७-९९॥ यह गीता जिस स्थानपर रहेगी वहाँसे सब प्रकारकी बाधा ऐसे दूर होजायगी जैसे सूर्य्यके प्रकाश होतेही अन्धकार दूर होजाता है ॥ १०० ॥ सन्ततिहीन व्यक्तिके लिये सुसन्तान प्राप्ति कारक, आसन्नप्रसवा स्त्रियोंके लिये सर्व्वमङ्गलप्रद और रोगीके लिये धन्वन्तरी सदृश इसका पाठ है, हे पितृवरो! इसमें आप विस्मय न करें ॥ १०१-१०२ ॥ हे पितृगण! इस गीताके सम्बन्धसे यथाविधि हवनात्मक अथवा पाठात्मक शिवयज्ञका अनुष्ठान समानरूपसे चतुर्वर्गफलप्रद है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। विशेषतः हे पितृगण! गृहस्थाश्रमके कल्याण चाहनेवाले इसके नित्यपाठद्वारा धन ऐश्वर्य्य पुत्र कलत्र और शान्तिके अधिकारी होंगे ॥ १०३-१०५ ॥ निवृत्तिमार्गगामी साधकगण इसके नित्यपाठद्वारा तत्वज्ञानके अधिकारी होकर निःश्रेयस प्राप्त करेगे ॥ १०६ ॥

अस्याः पाठेन नारीणां सतीत्वं प्रणयोऽनघः ।
दम्पत्योः स्याद्यथाकामं ज्ञानवत्सन्ततिस्तथा ॥१०७॥
प्रायशो वैदिका यागा लोपमेष्यन्त्यलं कलौ ।
त्रिलौहनिर्म्मितं लिङ्गरूपं मे विग्रहं वरम् ॥ १०८ ॥
स्थापयित्वा विधानेन तदा वै पितरो ध्रुवम् ।
ऋग्वेदसंहितास्वाहाकारेण सहितं खलु ॥१०९॥
विष्णोः सूर्य्यस्य शक्तेश्च धीशस्यापि यथाविधि ।
अस्याः शम्भोश्च गीताया हवनेन समन्वितम् ॥ ११०॥
सप्तशत्यास्तथा देवीमाहात्म्यस्यापि निश्चितम् ।
सप्तभिर्हवनैर्युक्तं साङ्गोपाङ्गैः समन्वितम् ॥ १११ ॥
विश्वधारकयागस्यानुष्ठानं मंगलालयम् ।
भक्ता मे ये करिष्यन्ति व्ययशाठ्यविवर्ज्जिताः ॥११२॥
सत्कारं विदुषां सम्यग्ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् ।
यथेष्टदानं दीनेभ्यः कृत्वा यज्ञं परापरम् ॥ ११३ ॥
विश्वधारकनामानं पूरयिष्यन्ति सर्वथा ।
स्वसङ्कल्पानुसारेण वैदिकानां फलं ध्रुवम् ॥११४॥

इसके पाठद्वारा स्त्रियोंमें सतीत्वधर्म्म और दम्पति में पवित्र प्रेमकी प्राप्ति होगी और पिता माताकी इच्छाके अनुसार ज्ञानवान् सुसन्ततिकी उत्पत्ति होगी ॥१०७॥ कलियुगमें प्राचीन वैदिक याग लुप्त प्राय होजायंगे, उस समय यदि त्रिलौहनिर्म्मित मेरे लिङ्गरूप विग्रहकी स्थापना पूर्व्वक ऋग्वेद संहिता स्वाहाकार सहित विष्णुगीता सूर्य्यगीता शक्तिगीता धीशगीता और इस शम्भुगीताके हवनके साथ देवीमाहात्म्य सप्तशतीका हवन, इस प्रकार सप्त हवनसमन्वित साङ्गोपाङ्ग विश्वधारक यागका अनुष्ठान मेरा भक्त करेगा और साथ ही साथ व्ययशाठ्यरहित होकर ब्राह्मणभोजन, विद्वान् ब्राह्मणोंका सत्कार और दीनदरिद्रोंको ययेष्ट दान करके विश्वधारक यज्ञकी

वाजपेयाश्वमेधादियज्ञानां महतामलम्।
लप्स्यन्ते ते हि निर्बाधं सन्देहो नाऽत्र कश्चन॥ ११५॥
यज्ञो दानञ्च तीर्थञ्च तपो वा तादृश न हि।
विश्वधारकयज्ञस्य यत् फलेन समं कलौ॥ ११६॥
भवेन्नैवात्र सन्देहः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः।
माहात्म्यं शम्भुगीताया मर्त्यलोके प्रचार्य्य वै॥११७॥
लोकद्वयस्य कल्याणं निष्पादयत कल्यदाः।
स्वयं कल्याणभाजश्च यूयं भवत सत्तमाः॥११८॥
इति श्रीशम्भुगीतासूपनिषत्सु ब्रम्हविद्यायां योगशास्त्रे

सदाशिवपितृसंवादे शिवलिङ्गनिरूपणं नाम
सप्तमोऽध्याय।
समाप्तेयं श्रीशम्भुगीता।



सभाप्ति करेगा तो उसके संकल्प के अनुसार अश्वमेध वाजपेयादि सब प्रकारके वैदिक यज्ञोंके फलकी उसको प्राप्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं॥ १०८-११६॥ ऐसा कोई यज्ञ, ऐसा कोई तीर्थ और ऐसा कोई दान और तप नहीं है जिसके फलकी तुलना कलियुगमें इस विश्व-धारक यागके साथ हो सक्ती हो, यही सत्य है। हे श्रेष्ठ पितृगण! आप इस गीताकी महिमा मनुष्यलोकमें प्रचारित करके उभय लोक का कल्याण साधन करें और स्वयं कल्याणको प्राप्त हों॥११७-११८॥

इसप्रकार श्रीशम्भुगीतोपनिषद्के ब्रह्मविद्या सम्वन्धी योग-शास्त्रका सदाशिव पितृसंवादात्मक शिवलिङ्गनिरूपण-नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।
यह श्रीशम्भुगीता समाप्त हुई।

श्रीविश्वनाथो जयति ।

धर्मप्रचारका सुलभ साधन ।

समाजकी भलाई ! मातृभाषाकी उन्नति !!

देशसेवाका विराट् आयोजन !!!

इस समय देशका उपकार किन उपायोंसे हो सकता है ? संसारके इस छोरसे उस छोरतक चाहे किसी चिन्ताशील पुरुषसे यह प्रश्न कीजिये, उत्तर यही मिलेगा कि धर्मभावके प्रचारसे ; क्योंकि धर्मने ही संसारको धारण कर रक्खा है। भारतवर्ष किसी समय संसारका गुरु था, आज वह अधःपतित और दीन हीन दशामें क्यों पच रहा है ? इसका भी उत्तर यही है कि वह धर्मभावको खो बैठा है। यदि हम भारतसे ही पूछें कि तू अपनी उन्नतिके लिये हमसे क्या चाहता है ? तो वह यही उत्तर देगा कि मेरे प्यारे पुत्रो ! धर्मभाव की वृद्धि करों। संसारमें उत्पन्न होकर जो व्यक्ति कुछ भी सत्कार्य करनेके लिये उद्यत हुए हैं, उन्हें इस बातका पूर्ण अनुभव होगा कि एसे कार्यो में कैसे विघ्न और कैसी बाधाएँ उपस्थित हुआ करती हैं। यद्यपि धीर पुरुष उनकी पर्वाह नहीं करते और यथासम्भव उनसे लाभ ही उटाते हैं, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उनके कार्योंमें उन विघ्न बाधाओंसि कुछ रुकावट अवश्य ही हो जाती है। श्रीभारतधर्म महामण्डलके धर्मकार्यमें इस प्रकार अनेक बाधाएँ होनेपर भी अब उसे जनसाधारणका हित साधन करनेका सर्वशक्तिमान् भगवान्ने सुअवसर प्रदान कर दिया हैं। भारत अधार्मिक नहीं है. हिन्दुजाति धर्म्मप्राण जाति है, उसके रोम–रोम में धर्म्मसंस्कार ओतप्रोत हैं। केवल वह अपने रूपको–धर्मभावको-भूल रही है। उसे अपने स्वरूपकी पहिचान करा देना-धर्मभावको स्थिर रखना ही श्रीभारतधर्ममहामण्डलका एक पवित्र और प्रधान उद्देश्य है। यह कार्य १९ वर्षों से महमण्डल कर रहा है और ज्यों ज्यों उसको अधिक सुअवसर मिलेगा, त्यों त्यीं वह जोर शोर से यह काम करेगा। उसका विश्वास है कि इसी

उपायसे देशका सच्चा उपकार होगा और अन्तमें भारत पुनः अपने गुरुत्वको प्राप्त कर सकेगा।

इस उद्देश्य साधनके लिये सुलभ दो ही मार्ग हैं। (१) उपदेशकों द्वारा धर्मप्रचार करना और (२) धर्मरहस्य सम्बन्धी मौलिक पुस्तकोंका उद्धार और प्रकाश करना। महामण्डलने प्रथम मार्गका अवलम्बन आरम्भसे ही किया है और अव तो उपदेशक-महाविद्यालय स्थापित कर महामण्डलने वह मार्ग स्थिर और परिष्कृत करलिया है। दूसरे मार्गके सम्बन्धमें भी यथायोग्य उद्योग आरम्भसे ही किया जा रहा है। विविध ग्रन्थोंका संग्रह और निर्माण करना, मासिक पत्रिकाओं का सञ्चालन करना, शास्त्रीय ग्रन्थोंका आविष्कार करना, इस प्रकारके उद्योग महामण्डलने किये हैं और उनमें सफलता भी प्राप्त की है। परन्तु अभीतक यह कार्य संतोष-जनक नहीं हुआ है। महामण्डलने अब इस विभाग को उन्नत करने का विचार किया है उपदेशकों द्वारा जो धर्मप्रचार होता है उसका प्रभाव चिरस्थायी होनेके लिये उसी विषयकी पुस्तकोंका प्रचार होना परम अवश्यक है; क्योंकि वक्ता एक दो वार जो कुछ सुना देगा, उसका मनन विना पुस्तकोंका सहारा लिये नहीं हो सकता। इसके सिवाय सव प्रकारके अधिकारियोंके लिये एक वक्ता कार्यकारीं नहीं हो सकता। पुस्तकप्रचार द्वारा यह काम सहल हो। जाता है। जिसे जितना अधिकार होगा, वह उतने ही अधिकारकी पुस्तकें पढ़ेगा और महामण्डल भी सव प्रकारके अधिकारियों के योग्य पुस्तकें निर्माण करेगा। सारांश, देशकी उन्नतिके लिये, भारत-गौरवकी रक्षाके लिये और मनुष्योंमें मनुष्यत्व उत्पन्न करनेके लिये महामण्डलने अब पुस्तक प्रकाशन विभागको अधिक उन्नत करने का विचार किया है और उसकी सर्वसाधारणसे प्रार्थना है कि वे ऐसे सत्कार्य में इसका हाथ वटायें एवं इनकी सहायता कर अपनी ही उन्नति कर लेने को प्रस्तुत हो जावें।

श्रीभारतधर्ममहामण्डल के व्यवस्थापक पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराजकी सहायता से काशी के प्रसिद्ध विद्वानों के द्वारा सम्पादित होकर प्रामाणिक, सुवोध और सुदृश्यरूप से यह ग्रन्थमाला निकलेगो। ग्रन्थमाला के जो ग्रन्थ छपकर प्रकाशित हो चुके हैं उनकी सूची नीचे प्रकाशित की जाती है।

शास्त्र प्रकाश विभाग–द्वारा प्रकाशित समस्त धर्म पुस्तकोंका विवरण ।

सदाचार सोपान ।

यह पुस्तक कोमलमति बालक बालिकाओंकी धर्म्मशिक्षा के लिये प्रथम पुस्तक है। उर्दू और बंगलाभाषा में इसका अनुवाद होकर छप चुका है और सारे भारतवर्ष में इसकी बहुत कुछ उपयोगिता मानी गई है। इसकी पांच आवृत्तियां छप चुकी हैं अपने बच्चोंकी धर्म्म शिक्षा के लिये इस पुस्तकको हर एक हिन्दू को मँगवाना चाहिये ।

मूल्य २५ पैसा ।

कन्या शिक्षा सोपान ।

कोमलमति कन्याओंको धर्म्मशिक्षा देने के लिये यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। इस पुस्तक की बहुत कुछ प्रशंसा हुई है। इसका बंगला अनुवाद छप चुका है। हिन्दू मात्रको अपनी अपनी कन्याओं को धर्म्मशिक्षा देने के लिये यह पुस्तक मँगवानी चाहिये ।

मूल्य २५ पैसा

धर्म सोपान ।

यह धर्म्मशिक्षाविषयक बड़ी उत्तम पुस्तक है। बालकोंको इससे धर्म्मका साधारण ज्ञान भली भाँति हों जाता है। यह पुस्तक क्या बालक बालिका, क्या वृद्ध स्त्री पुरुष, सबके लिये बहुत ही उपकारी है। धर्म्मशिक्षा पानेकी इच्छा करने वाले सज्जन अवश्य इस पुस्तक को मंगावें । मूल्य १) रुपया

ब्रह्मचर्य्यसोपान ।

ब्रह्मचर्य्यव्रतकी शिक्षाके लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। सब ब्रह्मचारी आश्रम, पाठशाला और स्कूलोंमें इस ग्रन्थकी पढ़ाई होनी चाहिये । मूल्य २५ पै०

राजशिक्षासोपान ।

राजा महाराजा और उनके कुमारोंको धर्म्मशिक्षा देनेके लिये यह ग्रन्थ बनाया गया हैं : परन्तु सर्वसाधारण की धर्म्मशिक्षा के लिये

भी यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी है। इसमें सनातनधर्म्मके अङ्ग और उसके तत्त्व अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य ५० पै०

साधनसोपान ।

यह पुस्तक उपासना और साधनशैलीकी शिक्षा प्राप्त करनेमें बहुतही उपयोगी है। इसका बंगला अनुवाद भी छपचुका है। बालक बालिकाओंको पहलेहीसे इस पुस्तकको पढ़ना चाहिये। यह पुस्तक ऐसी उपकारी है कि बालक और वृद्ध समानरूपसे इससे साधनविषयक शिक्षा लाभ कर सक्ते हैं। मूल्य २५ पैं०

शास्त्रसोपान ।

सनातनधर्म्मके शास्त्रोंका संक्षेप सारांश इस ग्रन्थमें वर्णित है सब शास्त्रोंका कुछ विवरण समझनेके लिये प्रत्येक सनातनधर्म्माबलम्बीके लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी है। मूल्य ५० पै०

धर्म्मप्रचारसोपान ।

यह ग्रन्थ धर्मोपदेशदेनेवाले उपदेशक और पौराणिक पण्डितोंके लिये बहुतही हितकारी है। मूल्य ५० पै०

उपरि लिखित सब ग्रन्थ धर्म्मशिक्षाविषयक है इस कारणस्कूल, कालेज और पाटशालाओंको इकट्ठे लेने पर कुछ सुविधासे मिल सकेंगे और पुस्तक विक्रेताओंको इनपर योग्य कमीशन दिया आयगा।

उपदेशपारिजात ।

यह संस्कृत गद्यात्मक अपूर्व ग्रन्थ हैं। सनातनधर्म्म क्या है. धर्मोपदेश किसको कहते हैं, सनातनधर्म्मके सब शास्त्रों में क्या विषय हैं, धर्म्मवक्ता होनेके लिये किन २ योग्यताओं के होनेकी आवश्यकता है इत्यादि अनेक विषय इस ग्रन्थ में संस्कृत विद्वान्मात्रको पढ़ना उचित हैं और धर्म्मवक्ता, धर्म्मोंपदेशक, पौराणिक पण्डित आदिके लिये तो यह ग्रन्थ सब समय साथ रखने योग्य है। मूल्य १ रुपया

इस संस्कृत ग्रन्थके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें योगदर्शन, सांख्य-दर्शन, दैंवीमीमांसादर्शन आदि दर्शन सभाष्य, मन्त्रयोगसंहिता, हठयोगसंहिता, लययोगसंहिता. राजयोगसंहिता, हरिहरब्रह्मसामरस्य,

योगप्रवेशिका, धर्म्मसुधाकर, श्रीमधुसूदनसंहिता आदि ग्रन्थ छप रहे हैं और शीघ्रही प्रकाशित होनेवाले हैं।

कल्किपुराण।

कल्किपुराणका नाम किसने नहीं सुना है। वर्तमान समयके लिये यह बहुत हितकारी ग्रन्थ है। विशुद्ध हिन्दी अनुवाद और विस्तृत भूमिका सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। धर्म्मजिज्ञासुमात्रको इस ग्रन्थको पढ़ना उचित है। मूल्य १) पचास पैसा

योगदर्शन।

हिन्दीभाष्य सहित। इसप्रकारका हिन्दी भाष्य और कहीं प्रकाशित नही हुआ है। सब दर्शनोंमें योगदर्शन सर्ववादि सम्मत दर्शन है और इसमें साधनके द्वारा अन्तर्जगत्के सब बिषयोंका प्रत्यक्ष अनुभव करादेनेकी प्रणाली रहनेके कारण इसका पाठन और भाष्य एवं टीका निर्माण वही सुचारु रूपसे करसक्ता है जो योगके क्रिया-सिद्धांशका पारगामी हो। इस भाष्यके निर्माणमें पाठक उक्त विषयकी पूर्णता देखेंगे! प्रत्येक सूत्रका भाष्य प्रत्येक सूत्रके आदिमें भूमिका देकर ऐसा क्रमबद्ध बनादिया गया है कि जिससे पाटकों को मनोनिवेश पूर्वक पढ़ने पर कोई असम्बद्धता नहीं मालूम होगो और ऐसा प्रतीत होंगा कि महर्षि सूत्रकारने जीवोंके कमाभ्युदय और निःश्रेयसके लिये मानो एक महान् राजपथ निर्माण करदिया है इसका द्वितीय संस्करण छपकर तैयार है. इसमें इस भाष्यको और भी सुस्पष्ट परिवर्द्धित और सरलकिया गया है। मूल्य ४) रुपये

नवीन दृष्टिमें प्रवीण भारत।

भारतके प्राचीन गौरव और आर्यजातिका महत्त्व जाननेके लिये यह एक ही पुस्तक है। मूल्थ ४) रुपये।

श्री भारत धर्म महामण्डल रहस्य।

इस ग्रन्थ में सात अध्याय है। यथा-आर्यजाति की दशा का परिवर्तन, चिन्ताका कारण, व्याधिनिर्णय, औषधिप्रयोग, सुपथ्यसेवन, बीजरक्षा और महायज्ञ साधन। यह ग्रन्थरत्न हिन्दूजातिकी उन्नतिके विषय का असाधारण ग्रन्थ है। प्रत्येक सनातनधर्मावलम्बीको इस

ग्रन्थको पढ़ना चाहिये। द्वितीयावृत्ति छप चुकी है, इसमें बहुत सा विषय बढ़ाया गया है। इस ग्रन्थका आदर सारे भारतवर्ष में समान रूप से हुआ है। धर्म्म के गूढ़ तत्त्व भी इसमें बहुत अच्छी तरह से बताये गये हैं। इसका बंगला अनुवाद भी छप चुका है। मूल्य ३) रु०

निगमागमचन्द्रिका ।

प्रथम और द्वितीय भाग की दो पुस्तकें धर्म्मानुरागी सज्जनोंको मिल सकती है। मूल्य २) रूपया

पहले के पाँच साँलके पाँच भागोंमें सनातन धर्म्म के अनेक गूढ़ रहस्य सम्बन्धी ऐसे ऐसे प्रबन्ध प्रकाशित हुए है कि आजतक वैसे धर्म्मसम्बन्धी प्रबन्ध और कहीं भी प्रकाशित नहीं हुए हैं। जो धर्मके अनेक रहस्य जानकर तृप्त होना चाहें वे इन पुस्तकों को मँगावें।

मूल्य पाँचों भागों का ५) रूपया

मन्त्र योग संहिता ।

योग विषयक ऐसा अपूर्व्व ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें मन्त्रयोगके १६ अङ्ग और क्रमशः उनके लक्षण, साधनप्रणाली आदि सब अच्छीतरह से वर्णन किये गये हैं। गुरु और शिष्य दोनों ही इससे परम लाभ उठा सकते हैं। इसमें मंत्रोंका स्वरूप और उपास्य निर्णय बहुत अच्छा किया गया है। घोर अनर्थकारी साम्प्रदायिक विरोधके दूर करनेके लिये यह एकमात्र ग्रन्थ है इसमें नास्तिकोंके मूर्तिपूजा, मन्त्रसिद्धि आदि विषयोंमें जो प्रश्न होते हैं उनका अच्छा समाधान है। मूल्य ४) रूपये

तत्त्वबोध ।

भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित। यह मूल ग्रन्थ श्रीशङ्कराचार्यकृत है। इसका वंगानुवाद भी प्रकाशित हो चुका है।

दैवीमीमांसा दर्शन प्रथम भाग ।

वेदके तीन काण्ड हैं। यथा–कर्म्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञान-काण्डका वेदान्त दर्शन, कर्म्मकाण्डका जैमिनी दर्शन और भरद्वाज दर्शन और उपासनाकाण्डका यह अङ्गिरा दर्शन है। इसका नाम दैवी-

मीमांसा दर्शन है। यह ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ था। इसके चार पाद है, यथा–प्रथम रसपाद, इस पाद में भक्तिका विस्तारित विज्ञान वर्णित है। दूसरा सृष्टिपाद, तीसरा स्थिति पाद और चौथा लयपाद, इन तीनों पादोंमें दैवीमाया देवताओंके भेद, उपासना का विस्तारित वर्णन और भक्ति और उपासनासे मुक्तिकी प्राप्तिका सब कुछ विज्ञान वर्णित हैं। इस प्रथम भागमें इस दर्शनशास्त्रके प्रथम दो पाद हिन्दी अनुवाद और हिन्दी भाष्य सहित प्रकाशित हुए हैं। मूल्य ५ रूपये

श्री भगवद्‌गीता प्रथम खण्ड।

श्रीगीताजीका अपूर्व्व हिन्दी भाष्य यह प्रकाशित हो रहा हैं जिसको प्रथम खण्ड, जिसमें प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्यायका कुछ हिस्सा है प्रकाशित हुआ है। आज तक श्रीगीताजी पर अनेक संस्कृत और हिन्दी भाष्य प्रकाशित हुए हैं परन्तु इसप्रकार का भाष्य आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। गीता का अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूपी त्रिविध स्वरुप, प्रत्येक श्लोकका त्रिविध अर्थ और सब प्रकारके अधिकारियों के समझने योग्य गीता–विज्ञानका विस्तारित विवरण इस भाष्य में मौजूद है। मूल्य ४) रुपये

मैनेजर, निगमागम बुक डिपो,

महामण्डल भवन, जगतगंज, बनारस।

सप्त गीताएँ

पञ्चोपासना के अनुसार पाँच प्रकारके उपासकों के लिये पाँच गीताएं–श्रीविष्णुगीता, श्रीसूर्य्यगीता, श्रीशक्तिगीता, श्रीधीशगीता और श्रीशम्भुगीता एवं सन्यासियोंके लिये सन्यासगीता और साधकों के लिये गुरुगीता भाषानुवाद सहित छप चुकी हैं। श्रीभारतधर्म महामण्डलने इन सात गीताओंका प्रकाशन निम्नलिखित उद्देश्योंसे किया हैं--१ में, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको धर्मके नामसे ही अधर्म्म सञ्चित करने की अवस्थामें पहुँचा दिया हैं, जिस साम्प्रदायिक विरोधने उपासकोंको अहंकारत्यागी होनेके स्थानमें घोर

साम्प्रदायिक अहंकार सम्पन्न बना दिया है, भारतकी वर्तमान दुर्दशा जिस साम्प्रदायिक विरोधका प्रत्यक्ष फल है और जिस साम्प्रदायिक विरोध ने साकार-उपासकोंमें घोर द्वेषदावानल प्रज्वलित कर दिया है उस साम्प्रदायिक विरोधका समूल उन्मूलन करना और २ य, उपासनाके नामसे जो अनेक इन्द्रियासक्तिकी चरितार्थताके घोर अनर्थकारी कार्य होते है उनका समाजमें अस्तित्व न रहने देना तथा ३ य, समाज में यथार्थ भगवद्भक्तिके प्रचार द्वारा इहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय तथा निःश्रेयस-प्राप्तिमें अनेक सुविधाओंका प्रचार करना। इन सातों गीताओंमें अनेक दार्शनिक तत्त्व अनेक उपासनाकाण्डके रहस्य और प्रत्येक उपास्य देवकी उपासनासे सम्बन्ध रखनेवाले विषय सुचारुरूपसे प्रतिपादित किये गये हैं। ये सातों गीताएँ उपनिषद्रूप हैं। प्रत्येक उपासक अपने उपास्यदेवकी गीतासे तो लाभ उठावेगा ही, किन्तु, अन्य चार गीतओंके पाठ करनेसे भी वह अनेक उपासनातत्त्वोंको तथा अनेक प्रचलित साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे जैसा विरोध उदय होता है वैसा नहीं होगा और वह परमशान्तिका अधिकारी हो सकेगा। सन्यास गीता में सब सम्प्रदायों के साधु और न्यासियोंके लिये सब जानने योग्य विषय सन्निविष्ट हैं। सन्यासी-ग इसके पाठ करने से विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। गृहस्थोंके लिये भी यह ग्रन्थ धर्म्म ज्ञानका भण्डार है। श्रीमहामण्डलप्रकाशित गुरुगीताके सदृश ग्रन्थ आजतक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ है। इसमें गुरु शिष्य लक्षण, उपासनाका रहस्य, भेद, मन्त्र हठ लय और राजयोगों के लक्षण और अङ्ग एवं गुरुमहात्म्य, शिष्यकर्त्तव्य, परमा तत्त्वका स्वरूप और गुरुशब्दार्थ आदि सब विषय स्पष्टरूपसे हैं। मूल, स्पष्ट सरल और सुमधुर भाषानुवाद और वैज्ञानिक टिप्पणी सहित यह ग्रन्थ छपा है। गुरु और शिष्य दोनोंका ऊपकारी यह ग्रन्थ है। इसका अनुवाद वंगभाषा में भी छप चुका है। पाठक इन सातों गीताओं को मंगाकर देख सकते हैं, ये छप चुकी हैं। विष्णुगीता का मूल्य २) रुपया, सूर्यगीता का मूल्य १) ५० पै०, शक्तिगीताका मूल्य २) रुपया, धीशगीताका मूल्य १) ५० पै०, शंभुगीता का मूल्य १०) रुपया, सन्नयासगीताका मूल्य २) रुपया और गुरुगीताका मूल्य १) २५ पै० है। इनमेंसे पञ्चोपासनाकी पाँचगीताओंमें एक एकतीनरंगा

विष्णुदेव सूर्य्यदेव भगवती और गणपतिदेव तथा शिवजीका चित्र भी दिया गया है।

मैनेजर, निगमागम बुकडीपो,

महामण्डलभवन, जगतगंज बनारस।

धार्मिक विश्वकोष।

(श्रीधर्म्मकल्पद्रुम)

यह हिन्दूधर्म्मका अद्वितीय और परमावश्यक ग्रन्थ है। हिन्दू जातिकी पुनरुन्नतिके लिये जिन जिन आवश्यकीय विषयोंकी जरूरत है उनमेंसे सबसे वड़ी भारी जरूरत एक ऐसे धर्म्मग्रन्थ की थी कि; जिसके अध्ययन–अध्यापनके द्वारा सनातन धर्म्मका रहस्य और उसका विस्तृत स्वरूप तथा उसके अङ्ग उपांगों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो सके और साथही साथ वेदों और शास्त्रों का आशय तथा वेदों और सब शास्त्रोंमें कहे हुए विज्ञानोंका यथाक्रम स्वरूप जिज्ञासु को भलीभाँति विदित हो सके। इसी गुरुतर अभावको दूर करनेके लिये भारतके प्रसिद्ध धर्मवक्ता और श्रीभारतधर्म्म महामण्डलस्थ उपदेशक महाविद्यालयके दर्शनशास्त्र के अध्यापक श्रीमान् स्वामी दयानन्दजी ने इस ग्रन्थका प्रणयन करना प्रारम्भ किया है। इसमें वर्तमान समयके आलोच्य सभी विषय विस्तृत रूप से दिये जायंगे। अव तक इसके छः खण्डों में जो अध्याय
प्रकाशित हुए हैं वे ये हैं- धर्म्म, दानधर्म्म, तपोधर्म्म, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ, महायज्ञ, वेद वेदाङ्ग, दर्शनशास्त्र (वेदोपाङ्ग) स्मृति-शास्त्र, पुराणशास्त्र, उपवेद, ऋषि और पुस्तक, साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म, वर्णधर्म्म, आश्रमधर्म्म, नारीधर्म्म (पुरुषधर्म्मसे नारीधर्म्मकी विशेषता), आर्य जाति, समाज और नेता, राजा और प्रजाधर्म, प्रवृत्तिधर्म्म और निवृत्तिधर्म, आपद्धर्म, भक्ति और योग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, गुरु और दीक्षा, वैराग्य और साधन, आत्मतत्त्व, जीवतत्त्व, प्राण और पीठतत्त्व, सृष्टि स्थिति प्रलयतत्त्व, ऋषि देवता और पितृतत्त्व अवतारतत्त्व, मायातत्त्व, त्रिगुणतत्त्व, त्रिभावतत्त्व कर्म्मतत्त्व, मुक्ति तत्त्व, पुरुषार्थ

और वर्णाश्रमसमीक्षा, दर्शनसमीक्षा, धर्मसम्प्रदायसमीक्षा, धर्मपन्थ-समीक्षा और धर्ममतसमीक्षा। आगेके खण्डोंमें प्रकाशित होनेवाले अध्यायों के नाम ये हैं:--साधनसमीक्षा, चतुर्दशलोकसमीक्षा, कालसमीक्षा, जीवन्मुक्ति-समीक्षा, सदाचार, पञ्च महायज्ञ, आह्निक-कृत्य, षोडश संस्कार, श्राद्ध, प्रेतत्व और परलोक, सन्ध्या तर्पण, ओंकार-महिमा और गायत्री, भगवन्नाम माहात्म्य, वैदिक मन्त्रों और शास्त्रोंका अपलाप, तीर्थमहिमा, सूर्य्यादिग्रह-पूजा, गोसेवा, संगीत-शास्त्र, देश और धर्म सेवा इत्यादि इत्यादि। इस ग्रन्थसे आजकलके अशास्त्रीय और विज्ञान रहित धर्म्मग्रन्थों और धर्म्मप्रचार के द्वारा जो हानि हो रही हैं वह सब दूर होकर यथार्थ रूपसे सनातन वैदिक धर्म्मका प्रचार होगा। इस ग्रन्थरत्नमें साम्प्रदायिक पक्षपातका लेशमात्र भी नहीं हैं और निष्पक्षरूपसे सब विषय प्रतिपादित किये गये है जिससे सकल प्रकारके अधिकारी कल्याण प्राप्त कर सकें। इसमें और भी एक विशेषता यह है कि हिन्दूशास्त्रके सभी विज्ञान शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके सिवाय, आजकलकी पदार्थ विद्या (Science) के द्वारा भी प्रतिपादित किये गये हैं जिससे आजकलके िवशिक्षित पुरुष भी इससे लाभ उठा सकें। इसकी भाषा सरल, मधुर और गम्भीर है। यह ग्रन्थ चौसठ अध्याय और आठ समुल्लासों में पूर्ण होगा और यह वृहत् ग्रन्थ रायल साइजके चार हजार पृष्ठोंसे अधिक होगा तथा बारह खण्डोंमें प्रकाशित होगा। इसी के अन्तिम खण्डमें आध्यात्मिक शब्दकोष भी प्रकाशित करनेका विचार है। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम खण्डका मूल्य ६) रुपया द्वितीय का १०) रुपये तृतीयका ३) ५० पै० चतुर्थका ५) पंचमका ३) ५० पै० और षष्ठका ४) रुपये है। इसके प्रथम दो खण्ड बढ़िया कागज पर भी छापे गये हैं और दोनों ही एक बहुत सुन्दर जिल्दमें बांधे गये हैं। मूल्य ५) है। सातवाँ खण्ड यन्त्रस्थ है।

मैनेजर, निगमागम बुक्डीपो,
महामण्डलभवन, जगतगंज, वाराणसी।

अंग्रेजी भाषाके धर्म्मग्रन्थ ।



श्री भारतधर्म्म महामण्डल शास्त्रप्रकाश विभाग द्वारा प्रकाशित सब संहिताओं, गीताओं और दार्शनिक ग्रन्थोंका अंग्रेजी अनुवाद तैयार हो रहा है जो क्रमशः प्रकाशित होगा। सम्प्रति अंग्रेजी भाषामें एक ऐसा ग्रन्थ छप गया है जिसके द्वारा सब अंग्रेजी पढ़े व्यक्तियों को सनातन धर्म्मका महत्त्व, उसका सर्वजीवहितकारी स्वरूप' उसके सब अङ्गोंका रहस्य, उपासनातत्त्व, योगतत्त्व, काल और सृष्टितत्त्व, कर्म्मत्त्व, वर्णाश्रमधर्म्मतत्त्व इत्यादि सब बड़े बड़े विषय अच्छी तरह समझमें आजावें। इसका नाम, वर्ल्ड्स इटरनल रिलिजन है। इसका मूल्य रायलएडीशनका ५) और साधारणका ३) है। जिल्द वंधी हूई है और दोनोंमें सात त्रिवर्ण चित्र भी दिये हैं।

मैनेजर, निगमागम बुकूडिपो

महामण्डलभवन, जगतगंज, वाराणसी।

श्रीमहामण्डलस्थ उपदेशक–महाविद्यालय

श्रीभारतधर्ममहामण्डल प्रधानकार्यालय काशी में साधु और गृहस्थ धर्म्मवक्ता प्रस्तुत करनेके अर्थ श्रीमहामण्डल-उपदेशक महाविद्यालय नामक विद्यालय स्थापित हुआ है। जो साधुगण दार्शनिक और धर्म्मसम्बन्धी ज्ञान लाभ करके अपने साधु जीवनको कृतकृत्य करना चाहें और जो विद्वान् गृहस्थ धार्मिक शिक्षा लाभ करके धर्म्मप्रचार द्वारा देशकी सेवा करते हुए अपना जीवन निर्वाह करना चाहें वे निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

प्रधानाध्यक्ष, श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल, प्रधान कार्यालय,

जगतगंज, वाराणसो।

उपदेशक-महाविद्यालय

सनातन धर्मके पुनरभ्युदय, सद्विद्याविस्तार और आर्यजातिके अभ्युदयसाधनार्थ श्रीभारतधर्ममहामण्डलकी स्थापना हुई है। किन्तु जब तक कर्मयोगमें निरतसाधु और गृहस्थ-धर्मसेवक और धर्मप्रचारक ऐसे नहीं उत्पन्न होंगे, जो दृढ़ प्रतिज्ञ हों आजीवन धर्मब्रतधारण, पूर्वक सनातनधर्मके पुनरभ्युदयके लिये यत्न करें, तब तक आर्य जाति की पुनरुन्नति और सनातनधर्म का पुनरभ्युदय होना असम्भव है।

प्राचीन कालमें आश्रमगुरु सन्यासी और वर्णगुरु ब्राम्हण आजीवन धर्मब्रतधारण करते हुए लोकोपकारमें रत रहते थे। जबसे वह शैली हिन्दूसमाज में शिथिल हो गयी है, तभीसे आर्यजातिकी अवनतिका प्रारम्भ हुआ है। आर्यसंतानको उसी त्रिलोकपावन धर्मव्रतकी शिक्षा देनेके अर्थ श्रीभारतधर्ममहामण्डलने सनातनधर्मके केन्द्रस्थल इस काशीधाममें उपदेशकमहाविद्यालय (Hindu Divinity College) स्थापित किया है, सर्वसाधारणके लिये उसकी नियमावली प्रकाशित की गई है। आशा है धर्मपरायण गृहस्थ और सन्यासी इस महा-यज्ञ में सम्मिलित होकर अपनी ऐहिक और पारलौकिक उन्नति करने में तत्पर होंगे

आर्यमहिला (आदर्श मासिक पत्रिका)

आर्यमहिला मासिक पत्रिका हिन्दी संसारकी एक उच्चकोटिकी प्राचीन पत्रिका है। इसके प्रत्येक अंकमें नित्य पठनीय एवं जीवनके उच्च नैतिक आदर्शोंसे अनुप्राणित साहित्य प्रकाशित होता है। आप स्वयं पढ़ें और अपने परिचितों, मित्रों, महिलाओं एवं पुरुषोंको पढ़ने के लिये प्रेरित करें।

वार्षिक मूल्य १०), एक प्रति का १) रु०

पत्रव्यवहारका पता -

व्यवस्थापक

श्रीआर्यमहिला हितकारिणी महापरिषद्,

महामण्डल भवन, लहुराबीर, वाराणसी

अखिल भारतीय धार्मिकाध्यात्मिक संस्कृत-विद्यापीठ

यह विद्यापीठ श्रीभारतधर्ममहामण्डलद्वारा स्थापित एवं संचालित है। इसमें वेद, वेदाङ्ग, व्याकरण, न्याय, साहित्य, मीमाँसा, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, राष्ट्रभाषा हिन्दी आदि विविध विषयोंकी परीक्षायें प्रथमासे लेकर शास्त्ररत्न तक प्रतिवर्ष नियमित हुआ करती हैं। इसके परीक्षाकेन्द्र भारतके प्रत्येक प्रान्त तथा नगरोंमें स्थापित हैं। जहाँ कहीं संस्कृतपाठशाला, पुस्तकालय आदि हों, और जो सज्जन इसके केन्द्र अपने यहां स्थापित करना चाहें, वे पत्रद्वारा केन्द्रस्थानकी अनुमति प्राप्त कर सकते हैं। शेष ज्ञातव्य विषय परीक्षा-नियमावली मँगा कर देखें।

परीक्षामन्त्री

संस्कृतविद्यापीठ

महामण्डलभवन, लहुरावीर, वाराणसी २२१००१

सूर्योदय

सनातनधर्म और हिन्दूसंस्कृतिकी प्रचारक यह अद्वितीय संस्कृत मासिक पत्रिका श्रीभारतधर्ममहामण्डलद्वारा गत ६५ वर्षोंसे प्रकाशित हो रही है। इसका वार्षिक मूल्य १५) तथा एक प्रतिका १·५० है। समस्तविद्यानुरागी, विद्यार्थी तथा संस्कृतभाषा प्रेमी सज्जनोंको ग्राहक बनकर संस्कृत-भाषाके प्रचारमें सहायक होना चाहिये। पत्रव्यवहार निम्न पतेसे करें।

व्यवस्थापक "सूर्योदय"

महामण्डलभवन, लहुरावीर, वाराणसी २२१००१

मुद्रक—हनुमान मुद्रण यन्त्र, बड़ी पियरी, वाराणसी।